दवितीय अध्याय

समस्या : संकल्पना एवं स्वरूप विवेचन

द्वितीय अध्याय

समस्या : संकल्पना एवं स्वरूप विवेचन

प्रस्तावना :

डॉ०आज वर्तमान युग में मानव वैश्विक धरातल पर विभिन्न प्रकार के अनुसंधानों द्वारा अपनी-अपनी समस्याओं का हल खोजने की कोशिश कर रहा हैं। वर्तमान मानव वैश्विक स्तर पर अनन्यसाधारण उन्नति कर रहा है। मनुष्य ने परमाणुबम, संगणक, यंत्र-मानव आदि अनेक चीजों का निर्माण किया हैं, जिससे मनुष्य जीवन समृद्ध होने में काफी सहायता हुई हैं। किंतु फिर भी मनुष्य हर समय नई-नई समस्याओं के साथ संघर्ष करता हुआ दिखाई देता हैं।

प्राचीन मानव की तुलना में आज का अर्वाचीन मानव कई अधिक मात्रा में सुख-समृद्धि एंव सुविधाओं के साथ जीवन व्यतीत कर रहा हैं। किंतु अर्वाचीन मानव की समस्याएँ भी प्राचीन मानव की अपेक्षा पृथक हैं तथा अधिक मात्रा में बढ़ती हुई दृष्टिगत होती हैं। आधुनिक मनुष्य-जीवन की समस्याएँ और प्राचीन मनुष्य-जीवन की समस्याएँ इन दोनों में काफी अंतर है, किंतु आज का वर्तमान मनुष्य-जीवन समस्याओं से पूर्णरूपेग मुक्त नहीं हो सका हैं, समस्याएँ वर्तमान में भी विद्यमान हैं।

आधुनिक युग में पारिवारिक समस्या, नारी समस्या, वर्ण तथा वर्ग भेद की समस्या, आर्थिक समस्या, लोकसंख्या की समस्या, आतंकवाद की समस्या, सांस्कृतिक आक्रमण की समस्या, सांप्रदायिकता की समस्या आदि अनेक समस्याओं से मानव जीवन त्रस्त हैं। इन समस्याओं को देखने पर 'आधुनिक युग' को 'विज्ञान युग' या 'संगणक युग' कहने की अपेक्षा 'समस्या युग' नाम से संबोधित करना ही समुचित होगा। मानव जितनी अधिक मात्रा में वैज्ञानिक उन्नति करता गया, उससे अधिक मात्रा में अपने लिए समस्याओं का निर्माण भी करता गया, चाहे वह अनजाने में ही क्यों न हो। मनुष्य ने जब अपनी एक समस्या का हल

जैसे ही प्राप्त किया, उससे उद्‌भुत अन्य समस्याएँ उसके सामने उपस्थित हो गयी। इस तरह मनुष्य जीवन में समस्याओं का सिलसिला चलता रहा हैं, किंतु वह अभी तक पूर्णरूपेण समस्या मुक्त नहीं हो सका।

अत: मनुष्य आजीवन विभिन्न समस्याओं से संघर्ष करता रहता हैं। आजीवन समस्याओं से संघर्षरत रहना मनुष्य की नियति है। इसी कारणवश मनुष्य जीवन का एक अभिन्न अंग है - समस्या।

2.1 'समस्या' शद्व से तात्पर्य / अभिप्राय :

'समस्या' शद्व 'सम्' उपसर्ग तथा 'अस' धातु के मेल से बना हुआ शद्व है। 'सम्' का अर्थ है - एकत्र। 'अस' का अर्थ है - रखना। अत: 'समस्या' इस शद्व का अर्थ हुआ एकत्र रखना। अर्थात् किसी छंद या वर्ण को एकत्र रखना।

'समस्या' इस शद्व का अभिप्राय जानने के लिए उसका कोशगत अर्थ देखना आवश्यक है। 'समस्या' शद्व का कोशगत अर्थ निम्न प्रकार है -

1. **हिंदी शब्दसागर** : इस कोश के अनुसार 'समस्या' का अर्थ है - "कठिन अवसर या प्रसंग। कठिणाई।"[1]
2. **नालंदा विशाल शब्दसागर** : 'समस्या' का अर्थ है - "वह उलझन वीली विचारणीय बात जिसका निराकरण सहज में न हो सके।"[2]
3. **शद्वकल्पद्रुम_** : "समस्या, स्त्री-समसनं उक्त्या संक्षेपणंम्। सम् + अस् + व्यत्"[3]
4. **भाषा - शद्व कोष** : के अनुसार 'समस्या' का अर्थ है - "कठिन या जटिल प्रश्न, गूढ़ या गहन वात, उलझन, कठिन प्रसंग।"[4]
5. **हिंदी विश्वकोश** : इस के अनुसार 'समस्या' का अर्थ है - "संघटन, मिश्रण, मिलने की क्रिया, कठिन अवसर या प्रसंग।"[5]
6. **मानक अंग्रेजी - हिंदी कोश** : के अनुसार 'समस्या' का अर्थ है - "उलझन, कठिण प्रश्न, पहेली, दुर्वोध वात, व्यूह, प्रहेलिका।"[6]

7. **अभिनव पर्यायवाची कोश :** 'समस्या' का अर्थ है - "कठिन विषय या प्रश्न या प्राब्लेम।"[7]

8. **ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी :** 'समस्या' शद्ब का अंग्रेजी पर्याय वाची शद्ब 'Problem' (प्राब्लेम) है। 'प्राब्लेम' शद्ब का अर्थ है - "A difficult or Puzzling question proposed for solution"[8] अर्थात् कटिन अथवा उलझन भरा वह प्रश्न जो सुलझाने के लिए प्रस्तुत हो।

उपर्युक्त अर्थ के अतिरिक्त अन्य अर्थ में भी 'समस्या' शद्ब प्रयुक्त मिलता हैं। 'समस्या' इस स्त्रीलिंग संस्कृत शद्ब का सर्वप्रथम प्रयोग अग्निपुराणकार ने किया है। 'सुशिलष्टवद्यमेंक यन्नानाश्लोकोश निर्मितम। सा समस्या परस्या ऽऽ त्मपस्यों: कृति संकरात' इन अग्निपुराण की पंक्तियों से डॉ० विमला भास्कर ने 'समस्या' शद्ब का अर्थ दिया है कि "समस्या वह है, जिस में अपनी एवं दूसरे की रचना का संगटन अथवा समन्वय हुआ हो।"[9] संस्कृत आचार्यो ने 'समस्या' को चित्रकाव्य के सात भेदों में से एक माना है। कुछ आचार्यो ने 'समस्या' को श्लोक या छंद आदि का अंतिम पद माना है। इसी कारण 'हिंदी शब्दसागर' में 'समस्या' शद्ब का अन्य एक यह भी अर्थ मिलता है - "किसी श्लोक या छंद आदि का वह अंतिम पद या टुकड़ा जो पूरा श्लोक या छंद बनाने के लिए तैयार करके दूसरों को दिया जाता है और जिस के आधार पर श्लोक या छंद बनाया जाता है।"[10] ध्यातव्य है कि भारतेंदुकालीन कविता की एक विशेषता 'समस्यापूर्ति' मानी जाती है। इसमें किसी एक समस्या को लेकर उसका समाधान एक छंद में वताया जाता था।

इन सभी कोशगत अर्थ एवं विवेचन से निष्कर्ष रूप में 'समस्या' के दो अर्थ निकलते है - 1. कठिन तथा दुर्बोध उलझन वाली चिंतनीय बात 2. श्लोक या छंद आदि का अंतिम पद। विवेच्य विषय के संदर्भ में 'समस्या' इस शद्ब का 'श्लोक या आदि का अंतिम पद' अर्थ ग्रहणीय नहीं हैं, बल्कि 'कठिन तथा दुर्वोध उलझन वाली चिंतनीय वात' इस अर्थ को ग्रहण करना ही समुचित है।

2.2 समस्या की परिभाषा :

समस्या को जानने के लिए 'समस्या' के अर्थ के अलावा उसकी परिभाषाओं को देखना भी आवश्यक है। कुछ विद्वानों ने 'समस्या' को परिभाषित करने का प्रयास किया है। परिभाषा के रूप में कुछ विद्वानों के मत द्रष्टव्य हैं -

1. डॉ० विमला भास्कर : इनके अनुसार "समस्या आज एक कठिन उलझन के सिवाय और कुछ नहीं है। मानव इस उलझन की सुलझन में इस तरह उलझ गया है कि सुलझन को पाने के लिए हाथ-पाँव हिलाने पर भी उसके हाथ में उलझन के सिवाय कुछ भी नहीं आ रहा है।...... मनुष्य इच्छाओं का दास है और इच्छाएँ सदैव अतृप्त रहती है। यही अतृप्ति कालांतर में जीवन में समस्याओं का जाल-सा फैला देती है। आज युग में तो समस्याएँ जीवन के लिए इतनी बढ़ गई है कि उनके कारण जीवन स्वंय एक समस्या हो गई है।"[11] अंत: डॉ० भास्कर के अनुसार समस्या एक उलझन मात्र है।

2. राम अहुजा : "सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण समाज में समस्याएँ उत्पन्न होती है।"[12] अत: राम अहुजा समस्या के निर्माण में सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को कारण मानते हैं।

3. हेगेल : हेगेल के मतानुसार समस्या एक द्वंद्वात्मक स्थिति से गुजरनेवाली प्रक्रिया हैं। इसके संदर्भ में डॉ० गणपतिचंद्र गुप्त लिखते है कि - "हेगेल के द्वंद्वात्मक स्थिति के अनुसार एक विचार आता है उसी विचार के अनुसार एक अवस्था पैदा होती है। फिर दूसरा विचार आता है, वह पहले विचार से टक्कर लेता है। फिर इन दोनों विचारों के टक्कर से तीसरा विचार उत्पन्न होता है। इस द्वंद्वात्मक प्रक्रिया में जिस क्रम से हम तत्त्व वोध पर पहुँचते हैं। वे तीन सोपान हैं - वाद, प्रतिवाद, समवाद।"[13]

4. किशोर गिरडकर : प्रा० १किशोर गिरडकर ने 'मन्नू भंडारी का कथा साहित्य' इस ग्रंथ में स्वीकार किया है कि - "आज समस्याएँ ही जीवन का पर्याय वन गई हैं।"[14]

5. इलाचंद्र जोशी : इनके मतानुसार - "आकाश के असीम विस्तार में टिमटिमाते तारों की तरह समस्याएँ भी अनगिनत और असंख्य हैं, उनकी यात्रा का कोई अंत नहीं।"[15] अत:

इलाचंद्र जोशी के मतानुसार आकाश के तारों की तरह मनुष्य जीवन में समस्याएँ भी असंख्य तथा अनगिनत होती है, जिसका कोई अंत दिखाई नहीं देता

6. डॉ॰ ज्ञान अस्थाना : डॉ॰ अस्थाना जी ने 'हिंदी कथा साहित्य समकालीन संदर्भ' ग्रंथ में समस्या के संबंध में अपने विचार व्यक्त किए है - "युगीन परिस्थितियों के अनुरूप सामाजिक संदर्भो का बदलना स्वाभाविक हैं। किंतु समस्या वहाँ उत्पन्न होती है, जब सार्थक जीवन मूल्य भी अर्थहीन हो जाते है।"[16]

7. डॉ॰ मान्धाता ओझा: डॉ॰ मान्धाता ओझा ने 'हिंदी समस्या - नाटक' में लिखा है कि - "समस्या समसामयिक जीवन में लक्षित विघटित जीवन-मूल्यों के प्रश्न का पर्याय है।"[17]

8. जैनेंद्रकुमार : द्वैत स्थिति को अनिवार्य बताते हुए जैनेंद्रकुमार समस्या की परिभाषा इन शब्दों में करते हैं - "धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, न्याय-अन्याय, सत्य-असत्य, जैसे जोडीदार शब्दों की स्थिती को जीवन से समाप्त कर दिया जाएगा तो जीवन का अर्थ भी समाप्त होने लग जाएगा। जीवन की ज्योति को, उसके वर्चस्व को बढ़ाना है, तो इस अंतिम द्वैत के बोध की और आत्मा को तीव्रतर होने देना होगा। इस प्रकार द्वैत-वेदना में से उस शक्ति का उदय होगा, जिसमें से पराक्रम और पुरूषार्थ फलित होता है।"[18]

9. डॉ॰सीलम वेंकटेश्वरराव : इनके अनुसार - "चेतना के स्तर पर जब परिस्थितियाँ विषम होकर उलझ जाती है, तो समस्या उत्पन्न हो जाती है। इसकी स्थिति सहज होती है, जो मनुष्य को संघर्ष के लिए प्रेरित करती है। संघर्षात्मक स्थिति की प्रक्रिया ही समस्या होती है।"[19]

उपर्युक्त विद्वानों के मंतव्यों को देखने पर 'समस्या' की संकल्पना विस्तृत रूप में स्पष्ट होती हैं कि 'समस्या' जीवन का वह पर्याय है, द्वंद्वात्मक स्थिति से गुजरनेवाली वह प्रक्रिया है ; जो सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों से प्रसूत होती है। समस्याएँ सार्थक जीवन-मूल्यों की अर्थहीनता के कारण उत्पन्न होती हैं तथा उनकी संख्या अनगिनत होती हैं। समस्याविहीन जीवन मृत प्राय होता है।

2.3 समस्या : स्वरूप एवं व्याप्ति :

वैश्विक धरातल पर प्रगतिशील मानव समाज को हर दम समस्याओं से घिरा हुआ पाया जाना, कोई नई बात नहीं हैं। हर मानव समस्या के जाल में फँसा हुआ है। परिवर्तनशील व्यक्ति समस्याओं से संघर्ष करते हुए उनसे हल प्राप्त करने की कोशिश करता हैं, किंतु वह एक समस्या का हल जैसे ही प्राप्त करता है, उसके सम्मुख दूसरी समस्या आ जाती है। इसीलिए डॉ० विमला भास्कर समस्या को मकड़ी के जाल सदृश्य मानती है। उनका कथन द्रष्टव्य है - "(समस्या) आज मकड़ी के उस जाल सदृश लगती है, देखने में तो अलग-अलग तंतुमय ही दिखाई देते हैं। परंतु एक-दूसरे से निगुंथित हैं कि उन्हें अलग किया ही नहीं जा सकता।"[20] इसी कारणवश व्यक्ति परिवार, अर्थ, राजनीति आदि के समस्यारूपी अजगर के जाल में फँस गया हैं। उस व्यक्ति को "समस्याओं के जाल में उलझना तो आसान हो गया हैं, पर मकड़ी की तरह वह उससे निकल नहीं रहा हैं।"[21]

'समस्या' परिवर्तनशील समाज की स्थिति तथा समय से प्रसूत होती है। जिस तरह हर युग में समाज की स्थिति एक समान नहीं होती उसी तरह हर युग की समस्याएँ भी एक समान नहीं होती। युगानुरूप समस्याओं में भी परिवर्तन होता रहता हैं। समस्याएँ समाजोद्भावित तथा प्राकृतोद्भावित दोनों तरह की होती हैं। धर्म, राजनीति, अर्थ, समाज, परिवार, व्यक्ति, वर्ण, वर्ग आदि सभी लोक-जीवन से संबंधित विविध संस्थाओं से उद्भुत समस्याएँ समाजोद्भावित या मानवनिर्मित समस्याओं के अंतर्गत आती हैं, तो अकाल, अवर्षण, भूकंप बाढ़ आदि से उद्भुत समस्याओं को नैसर्गिक अथवा प्राकृतिक समस्याएँ माना जाता हैं। समाजोद्भावित समस्याएँ समाज अथवा मानव के द्वारा निर्माण होती हैं, तो प्राकृतिक समस्याएँ प्रकृति के द्वारा निर्माण होती हैं। किंतु दोनों स्थितियों में इन सभी समस्याओं का सामना समाज को ही करना पड़ता हैं। अर्थात् इन दोनों स्थितियों का परिणाम समाज की हर इकाई पर पड़ता हैं।

'समस्या' कोई सीधी सरल प्रक्रिया ना होकर, मनुष्य को चुनौतीदायी, अनुप्रणित एवं उत्प्रेरित करनेवाली, मनुष्य मस्तिष्क को झकझोरती हुई उसे सतत चिंतनशील बनानेवाली

जटिलतायुक्त प्रक्रिया हैं। 'समस्या' एक विचारों की प्रक्रिया है, जो द्वंद्वात्मक स्थिति से गुजरती है। इसके तीन सोपान अथवा तीन अवस्थाएँ होती हैं - वाद, प्रतिवाद, समवाद। हेगेल के द्वंद्वात्मक सिद्धांत के अनुसार मस्तिष्क में एक विचार आता है, और तद्नरूप अवस्थाएँ पैदा होती हैं। तद्पश्चात दूसरा विचार आता है और वह पहले विचार से टकराता है, जिसके टकराव से तिसरा विचार निर्माण होता है। इस द्वंद्वात्मक प्रक्रिया में हम वाद, प्रतिवाद, समवाद इन तीन अवस्थाओं से गुजर कर ही तत्त्वबोध पर पहुँचते हैं। इसमें तिसरे विचार या तत्त्व का निर्माण ही समस्या है। अर्थात् दो परिस्थितियों के पारस्पारिक विरोध से 'समस्या' का उद्भव होता हैं।

मनुष्य समस्याओं से अपना पीछा छुड़ाना चाहता हैं। किंतु समस्याविहीन मनुष्यजीवन कुएँ की भाँति जड़वत हो जाएगा। मनुष्य का जीवन समस्याओं से संघर्ष करते हुए गंगा की तरह बहता रहना चाहिए। मनुष्य की समस्याएँ व्यक्तिगत अथवा आंतरिक तथा बाह्य दोनों तरह की होती हैं। यह दोनों परस्परावलंबी हैं। आंतरिक समस्या मनोविज्ञान से संबंधित होती है, तो बाह्य समस्या बाह्यजीवन से। हिंदू धर्म ग्रंथो में वर्णित षड़रिपुओं - काम, क्रोध, मध, लोभ, मोह, ईर्ष्या-में से एक भी समस्या उपस्थित करने में सक्षम हैं। इसके कारण आंतरिक समस्याएँ निर्माण होती हैं। इसी संदर्भ में एक कथन द्रष्टव्य है - "मनुष्य इच्छाओं का दास है और इच्छाएँ सदैव अतृप्त रहती हैं। यह अतृप्ति कालांतर में जीवन में समस्याओं का जाल सा फैला देती है।"[22] अत: मनुष्य की अतृप्त इच्छाओं के कारण आंतरिक समस्या निर्माण होती हैं और उसके प्रभावस्वरूप बाह्य समस्या निर्माण होती है।

समाज के समुचित संचालन के लिए मूल्यों की आवश्यकता होती हैं। मूल्याधृत समाज ही सभ्यता और संस्कृति का भव्य प्रासाद निर्माण कर सकता हैं। जब सामाजिक मूल्य और व्यक्तिगत मूल्य के बीच संतुलन नहीं रहता तब समस्या का उद्भव होता है। लेकिन वह समस्या स्थिर नहीं रहती। उसमें परिवर्तन होता ही हैं। इसके संदर्भ में डॉ० गिरीराज शर्मा 'गुंजन' लिखते है कि- "परिवर्तन मानव सभ्यता की नियति है। विचार, रहन-सहन एवं क्रिया-कलाप की दृष्टि से समाज में निरंतर परिवर्तन की प्रक्रिया गतिमान है। परिवर्तन की

यह क्रिया द्वंद्वात्मक है। मनुष्य समय की गति के साथ अन्य समस्याओं एवं संस्कृतियों के संपर्क में आकर नवीन उपलब्धियाँ प्राप्त करता है।"[23] अत: समाज के दृष्टिकोण, विचार, मूल्य, परंपराएँ चिरपरिवर्तनशील होती हैं। इसी कारण समस्याएँ भी परिवर्तनशील हैं। "मूल्य समाज की वह आधारशिला है जिस पर सभ्यता और संस्कृति का भव्य प्रासाद निर्मित होता है।"[24] इसलिए गैर मूल्यों को पनपने से रोक कर उसमें सुधार करना ही मूल्य से संबंधित समस्याओं का हल है।

जब-जब व्यक्ति में निजी स्वार्थ और अहं की प्रवृत्ति विकसित होती है तब-तब त्याग, सहानुभूति, ममता, सेवा आदि मूल्यों का अवमूल्यन कर अपने अहं को बनाए रखने के लिए व्यक्ति प्रयत्नशील रहता है और जाने-अनजाने में समस्याओं को जन्म देता हैं। समस्या ही मनुष्य को चिंतनशील बनाती है। जब मनुष्य अपनी आशा-आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहता हैं तब उससे समस्याएँ प्रसूत होती हैं। समस्या मानव जीवन की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। 'समस्या' ही मनुष्य जीवन को सक्रिय बनाती है, इसके अभाव में मनुष्य जीवन निष्क्रिय है। समस्याओं से पीड़ित मानव जब उसे सुलझाने का प्रयास करता हैं तो उसके विविध गुण-दोषों का दर्शन हो जाता है।

प्रारंभ में 'समस्या' शद्ब का अर्थ केवल साहित्य से जुड़ा हुआ था। किंतु 'समस्या' शद्ब का अर्थ-विस्तार हो गया है। वर्तमान युग मे 'समस्या' शद्ब केवल साहित्य से जुड़ा हुआ नहीं, है बल्कि विविध क्षेत्रों में इस शद्ब का प्रयोग हो रहा है। जैसे-सामाजिक समस्या, आर्थिक समस्या, राजनीतिक समस्या आदि। 'समस्या' शद्ब हर क्षेत्र में प्रवेश कर चुका हैं। हर क्षेत्र में आ रही उलझनों के लिए 'समस्या' शद्ब का प्रयोग हो रहा है।

उपर्युक्त विवेचन को देखने के पश्चात् दृष्टिगोचर होता हैं कि 'समस्या' की व्याप्ति अनंत है। इसका स्वरूप भी विविधांगी है। अत: निसंकोच रूप से कहा जा सकता है कि 'समस्या' का स्वरूप एवं व्याप्ति अनंत विस्तृत हैं।

2.4 समस्या के प्रकार :

'समस्या' इस शद्ब का अर्थ विस्तृत है। 'समस्या' विविध क्षेत्रों में अपना प्रभाव

दिखा रही हैं। हर क्षेत्र समस्या से ग्रस्त हैं। इसी कारणवश समस्या के प्रकार भी विविध क्षेत्रों के नाम के आधार पर विविध हैं।

अनेक विद्वानों ने 'समस्या' पर विचार-विमर्श तथा चिंतन किया हैं। हर विद्वान समस्याओं के विविध प्रकार मानते हैं। विभिन्न आधारों पर 'समस्या' के विविध प्रकारों का यहाँ विवेचन तथा विश्लेषण करना आवश्यक जानते हुए 'समस्या' के विविध प्रकार यहाँ दिए जा रहे हैं।

2.4.1 सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक-आर्थिक-धार्मिक के आधार पर :

इस आधार पर समस्या के निम्नलिखित भेद या प्रकार होते हैं -

2.4.1.1 सामाजिक समस्या :

मनुष्य समाजशील प्राणी है। मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएँ समाज के द्वारा ही पूर्णत्व को प्राप्त करती हैं। जब इन समस्याओं की परिपूर्ति में समाज या सामाजिक संस्थाएँ असमर्थ बन जाती है; तब जो समस्याएँ निर्माण होती हैं, उन समस्याओं को 'सामाजिक समस्या' की कोटि में रखा जाता है।

राम अहुजा मानते हैं कि, "सामाजिक समस्या शद्व का उसी विषय के लिए उपयोग किया जाता है, जिसे सामाजिक आचारशास्त्र और समाज प्रतिकूल समझता है।"[25] अत: राम अहुजा मानतें हैं कि - सामाजिक आचारशास्त्र और समाज जिसे प्रतिकुल समझता है, वहीं सामाजिक समस्या है। डॉ॰ सुनंदा पालकर का मत द्रष्टव्य है कि - "सामाजिक समस्या वह स्थिति है, जो बहुत से लोगों को अनुचित रूप से प्रभावित करती है, और जिसके निराकरण के लिए सामूहिक कार्य की आवश्यकता होती हैं।"[26] अत: सामाजिक समस्या बहुत से लोगों को प्रभावित करने के साथ ही उनके सामूहिक कार्य के द्वारा हल होती हैं।

समाज की परिभाषा देते हुए डॉ॰ विमला भास्कर लिखती है कि - "समाज मानवों के संगठन की ऐसी इकाई है जिसका खंड़न भी कभी संभव नहीं हो सकता। इस समाज का प्रत्येक प्राणी सामाजिक है।"[27] डॉ॰ राजपाल शर्मा मानते हैं कि - "किसी प्रदेश के निवासियों की ऐसी जटिल व्यवस्था को जिसमें वे व्यावसायिक, पारिवारिक, धार्मिक, आर्थिक,

या राजनैतिक संबंधों की दृष्टि से अंतर्सबंद्धित रहते हैं, इसे समाज कहते है।"[28] अत: समाज वह इकाई है, जो कभी खंड़ित न हो कर मानव को सामाजिक बनाती है। समाज का हर प्राणी व्यावसायिक, पारिवारिक, धार्मिक, राजनैतिक आदि संबधों की दृष्टि से आपस में अंतर्सबद्धित रहता हैं। जब समाज की किसी इकाई में अंतर्सबंधो में बाधा उत्पन्न हो जाती हैं, तब सामाजिक समस्याएँ निर्माण होती हैं।

समाज की अनेक इकाइयाँ हैं। जैसे - व्यक्ति, परिवार, समाज आदि। जब समाज की इकाई अपनी प्राथमिक आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर पाती, तब समाज उसे प्रतािडित करता है। जिसके परिणामस्वरूप उसका सामाजिक स्तर गिर जाता है जिसके कारण एक सामाजिक समस्या निर्माण होती है। व्यक्ति की प्राथमिक आवश्यकताएँ इतनी बढ़ गई है कि व्यक्ति या समाज की प्राथमिक आवश्यकताएँ ही एक सामाजिक समस्या बन गई हैं। यहीं प्राथमिक आवश्यकताएँ नई-नई सामाजिक समस्याएँ सृजित करती जा रहीं हैं और समाज समस्या के चक्रव्यूह में फँसता जा रहा हैं।

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को देखने के बाद मालूम हो जाता है कि भारतीय समाज में ऐसी कई समस्याएँ आज भी मौजूद हैं जिससे वर्तमान सामाजिक प्राणी-मानव संघर्षरत हैं। हर व्यक्ति को अपना जीवन-यापन करने के लिए सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं।

समाज कई इकाइयों का संगठन होने के कारण समाज की विविध इकाइयाँ होती हैं। इन विभिन्न इकाइयों की समस्याएँ भी होती है। इन समस्याओं का अंतर्भाव सामाजिक समस्याओं में हो जाता हैं। अत: हमें सामाजिक समस्याओं को देखते समय समाज की इकाइयों की समस्याओं को भी देखना पड़ता हैं, जिनका समावेश सामाजिक समस्याओं के अंतर्गत होता हैं। अत: सामाजिक समस्याएँ निम्नलिखित हैं -

1. पारिवारिक समस्या
2. विवाह की समस्या
3. नारी समस्या

4. यौन समस्या
5. विधवा समस्या
6. वेश्या समस्या
7. अकेलेपन की समस्या
8. प्रेम की समस्या
9. आत्महत्या की समस्या
10. आम आदमी के शोषण की समस्या
11. दांपत्य-जीवन की समस्या
12. वर्ग संघर्ष की समस्या
13. वर्ण व्यवस्था की समस्या
14. जातिवाद की समस्या
15. शराणार्थीयों की समस्या
16. शिक्षा व्यवस्था की समस्या
17. भ्रष्टाचार की समस्या
18. अंध, विश्वास की समस्या
19. सती प्रथा की समस्या
20. शहरीकरण की समस्या
21. ग्रामीण समाज जीवन की समस्या
22. अतिथि की समस्या
23. बढ़ती आवादी की समस्या
24. संतान की समस्या
25. वृद्धों की समस्या
26. मद्यपान की समस्या
27. दहेज-प्रथा की समस्या

28. महानगरीय समाज जीवन की समस्या

29. भाषा की समस्या

30. अनाथों की समस्या

31. फैशन की समस्या

32. स्वच्छंद जीवन की समस्या

33. तलाक की समस्या

34. मनोरूग्णों की समस्या

35. कुमारी माता की समस्या

उपर्युक्त समस्याओं के कारण समाज-जीवन पर विपरीत परिणाम देखने को मिलता हैं। यह समस्याएँ समाज-जीवन में बाधाएँ पहुँचाती हैं। जिसके परिणामस्वरूप समाजोन्नति नहीं हो पाती और समाज-जीवन सुचारू रूप से नियमित तथा नियंत्रित नहीं बन पाता है। वर्तमान मानव-जीवन आधुनिकीकरण, औद्योगिकरण, आदि से प्रभावित हैं। भारतीय समाज-जीवन पर इनके अतिरिक्त पाश्चात्य संस्कृति आदि का भी गहरा प्रभाव हैं।जिसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज विघटन की कगार पर खडा है और उसका प्रभाव भी काफी मात्रा में सामने आ रहा है। हर व्यक्ति अपने जीवन में स्वयं-निर्मित विचारों का अवलंब कर रहा हैं। हर व्यक्ति अपने अस्तित्व को बनाए रखने में कार्यरत है। इन सभी के कारण मानव-जीवन या समाज जीवन असंगत बन गया है। फलस्वरूप समाज को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा हैं। जिसमें कभी सफल होता है; तो कभी-कभी उसे असफल होना पड़ता है।

प्रा० वसंत वैद्य जी अपनी रचना 'भारतीय सामाजिक समस्या' में लिखते हैं कि - "सामाजिक विघटन के कारण सामाजिक समस्याएँ निर्माण होती हैं।"[29] जव व्यक्ति के सामाजिक संबंध टूटते हैं, तव व्यक्ति, समुदाय, दल पर कोई नियंत्रण नहीं रहता और नियंत्रण के अभाव में विघटन हो जाता है, जो सामाजिक समस्याओं को निर्माण करता हैं। औपचारिकता स्वार्थी प्रवृत्ति, पवित्र तत्त्वों तथा मूल्यों का ह्रास, अस्थिरता उत्पन्न करनेवाली

घटना, वैयक्तिक अधिकार की लालसा, पारस्पारिक विश्वास का अभाव, अधिकाधिक सुखप्राप्ति की महत्वाकांक्षा, जनसंख्या में विविधता इन के कारण सामाजिक विघटन होता हैं। सामाजिक विघटन के तीन स्तर माने जाते हैं -

1. वैयक्तिक अथवा व्यक्तिगत विघटन
2. कौटुंबिक अथवा पारिवारिक विघटन
3. सामुदायिक अथवा सामूहिक विघटन

सामाजिक इकाई के विघटन से समाज-विघटन या सामाजिक विघटन होता है। परिणामस्वरूप सामाजिक समस्याओं का प्रणयन हो जाता हैं। इन समस्याओं का हल निकालना और उसे कार्यान्वित कर समाजोन्नति में अपना योगदान देना समाज तथा सामाजिक इकाइयों का दायित्व बनता हैं, तभी समाज सुचारू रूप से संचलित हो सकता हैं।

2.4.1.2 सांस्कृतिक समस्या :

हर समाज या देश की अपनी संस्कृति होती है। देश के नागरिकों को संस्कार संपन्न बनाने का कार्य संस्कृति करती हैं। आचार-विचार, वेशभूषा, रहन-सहन, वर्ण, भाषा, आदि के स्तर पर संस्कृति नागरिकों को एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य करती हैं। इसलिए मानव-जीवन के लिए संस्कृति एक महत्वपूर्ण तत्त्व है।

डॉ० एम० के० गाडगील संस्कृति के संदर्भ में लिखते हैं कि - "मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है, उसी को संस्कृति कहते है।"[30] हर संस्कृति विशिष्ट समाज के अनुकूल होती है। संस्कृति में उस समाज या देश के विभिन्न सिद्धांतों, मत-मतांतरो, विचारधाराओं, प्रवृत्तियों, भौगोलिक स्पिपधतियों आदि के प्रति अनुकूलता होती हैं। इसी संस्कृति के कारण देश की एकता अथवा समन्वय की भावना को अखंड़ रखा जाता है। संस्कृति राष्ट्रीय एकता और अखंड़ता की भावना को बल प्रदान करती हैं। उदाहरण के तौर पर भारतीय संस्कृति को देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम् संस्कृतियों में से एक हैं। इसी संस्कृति के कारण भारत में विविधता होते हुए भी एकता दिखाई देती हैं। किंतु पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता का प्रभाव, आधुनिकता,

आदि के कारण हमारे सांस्कृतिक दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है, जिसके फलस्वरूप सांस्कृतिक समस्याएँ उद्‌भूत हो रही हैं। इस संदर्भ में प्रभा वर्मा जी का कथन द्रष्टव्य है - "बीसवीं शताब्दी की महत्वपूर्ण घटना विज्ञान का विकास है। वैज्ञानिक आविष्कारों से मानव रहन-सहन, विचारों एवं भावनाओं में परिवर्तन आया। आधुनिक संस्कृति विज्ञान की संस्कृति है।"[31]

विज्ञान के कारण मानव जीवन-मूल्य परिवर्तीत हुए तथा यांत्रिक संस्कृति का निर्माण हुआ। पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय संस्कृति को असाधारण रीती से प्रभावित किया है। इस संदर्भ में एक कथन द्रष्टव्य हैं - "पश्चिमी संस्कृति बुरी तरह हमें प्रभावित कर रही है। नेहरू जैसे स्वतंत्र चेता भी इस घेरे से मुक्त नहीं थे। एक तरफ यह कहा जा रहा है कि 'संस्कृति का व्यापक जनाधार' जरूरी है, मगर दूसरी तरफ आधुनिकीकरण के सवाल पर पश्चिमीकरण की दुहाई दी जाती है। ...... यद्यपि समाज संस्कृति के द्‌वंद्‌व ने एहसास अवश्य कराया था कि एक परिवर्तन की जरूरत है। यह परिवर्तन पहले पश्चिमीवाद के सहारे आया जिससे भारत के नैरंतर्य पर चोट पड़ी और संस्कृति क्षेत्र में शहर-ग्राम फासला और भी अधिक गहराने लगा।"[32] पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित भारतीय संस्कृति ने जो परिवर्तन ग्रहण किया, उसके परिणाम समाज में दिखाई देने लगे हैं। इस परिवर्तन के कारण विविध सांस्कृतिक समस्याएँ उद्‌भूत होकर सम्मुख खड़ी रही हैं, जिनसे छुटकारा मिलना लगभग असंभवसा प्रतित हो रहा हैं।

सांस्कृतिक समस्याओं के अंतर्गत जिन समस्याओं का समावेश होता हैं, वह निम्नलिखित हैं -

1. मानवीय मूल्यों के संक्रमण की समस्या
2. सांस्कृतिक संक्रमण की समस्या
3. सांस्कृतिक आक्रमण की समस्या
4. विलासिता प्रवृत्ति की समस्या
5. पाश्चात्य संस्कृति की समस्या

6. यांत्रिक संस्कृति की समस्या
7. वेशभूषा की समस्या
8. सामाजिक मूल्यों का ऱ्हास
9. भौतिक सुखप्राप्ति की लालसा
10. फैंशन की समस्या
11. अंग-प्रदर्शन की समस्या
12. क्लब की समस्या
13. मांस-मदिरा सेवन की समस्या
14. ग्रामीण संस्कृति का ह्रास
15. शहरी संस्कृति का विकास
16. परंपरागत मूल्यों का ह्रास
17. अमानवीय मूल्यों का विकास
18. नैतिक-अनैतिकता की समस्या
19. आभूषणों की समस्या
20. चारित्रिक पतन की समस्या
21. सांस्कृतिक भिन्नता की समस्या
22. पुरानी रूढ़ियों, परंपराओं की समस्या

उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त अन्य विविध प्रकार की समस्याओं का अतंर्भाव सांस्कृतिक समस्या के अंतर्गत होता हैं। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से प्रभावित वर्तमान भारतीय मानव भौतिक सुखों के प्रति अदम्य आकांक्षा के कारण विभिन्न सांस्कृतिक समस्या निर्माण करता जा रहा हैं। इन समस्याओं के कारण अपनी ही संस्कृति का वह ह्रास करने के लिए कारणमात्र ठहरता हैं।

अत: सांस्कृतिक समस्याओं के अंतर्गत संस्कृति से संबंधित समस्याएँ ही समाविष्ट होती हैं, जो प्रगतिशील मानव के लिए बाधा है।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

2.4.1.3 राजनीतिक समस्या :

स्वातंत्र्यपूर्व काल में जिन समस्याओं का सामना देश के लोगों को करना पडता था, उन समस्याओं का सामना आज के नागरिकों को करना नहीं पड़ता हैं। किंतु 15 अगस्त 1947 के बाद-स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की समस्याएँ भी पहले की अपेक्षा अधिक मात्रा में बढ़ गई हैं। वर्तमान समय में ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं बचता जहाँ राजनीति का प्रभाव न दिखाई देता हो। हर क्षेत्र राजनीति से प्रभावित है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जिन सुखद-स्थितियों की अपेक्षा थी, वह नहीं आ सकी हैं। डॉ० वर्मा का कथन द्रष्टव्य है - "भारतीय साधारण जनता ने सोचा था कि स्वतंत्रता के पश्चात् उसकी स्थिति में सुधार आएगा, उसकी आर्थिक स्थिति सुधरेगी। किंतु स्वतंत्रता के पश्चात् आज तक उसकी स्थिति निरंतर बिगड़ती जा रही है और इस विषमता का प्रमुख कारण राजनीतिज्ञों के राजनीतिगत स्वार्थ है।"[33] राजनीतिक नेताओं के स्वार्थ ने शासन व्यवस्था को खोखला बनाया हैं। "क्षुद्र स्वार्थों के कारण राजनीति में जितना भ्रष्टाचार हुआ है, हो सकता है, होने की संभावनाएँ हैं उतना अन्यत्र दुर्लक्ष है।"[34] कहना आवश्यक नहीं कि; नेताओं की सत्ता प्राप्ति की लालसा तथा स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण राजनीति में विविध समस्याएँ निर्माण हो रही हैं। भ्रष्टाचार भारतीय राजनीति की प्रधान समस्या रहीं है।

वस्तुत: जिस नीति को समस्त देशवासियों के कल्याण के लिए अपनाया जाता है, वही सच्ची राजनीति है। इस राजनीति के द्वारा अवैध, विनाशकारी, भ्रष्ट, अनुचित आचार-विचार-व्यवहार पर प्रतिबंध लगातार जनपद-कल्याण, जन-पालन और जनता को समयोचित रूप में अनुशासन वद्ध करते हुए उनको सत्य, शिव एंव सुंदर की ओर अग्रेषित किया जाता हैं। "जिन राजनीतिक मूल्यों को लेकर किसी राष्ट्र का ढाँचा तैयार किया जाता हैं। उन्हीं के अनुरूप उस देश में मानव प्रतिभा निर्मित होती है।"[35] स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीति के प्रागंण में आदर्श राष्ट्रीय राजनीति का दर्पण चकनाचुर हो गया और अनीति का अत्यंत नग्न यथार्थ सम्मुख उपस्थित हुआ, जो इन शद्बों में अंकित है - "कहो नीति, सुनो नीति, लिखो नीति, पर करो अनीति यही आज की राजनीति।"[36] वर्तमान समय में राजनीति

कुर्सी का पर्याय बनी है तथा विधायक स्वतंत्रता की बजाए कुर्सी को ही अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मान रहे है। राजनीति को व्यक्तिगत तथा दलीय स्वार्थपूर्ति के रूप में स्वीकृत की जाने लगी हैं। जनता के मसले वोट के आधारपर तैय होने लगे हैं और वोट धन-शक्ति-सत्ता के बल पर क्रय-विक्रय किए जा रहे हैं। न्याय, प्रशासन, पत्रकारिता, कानून आदि प्रजातांत्रिक व्यवस्था के आधारस्तंभ राजनेताओं के संकेत पर नर्तन करते दृष्टिगत होते हैं। यह सभी जनता के शोषण के माध्यम बनते जा रहे हैं और स्वयं शोषण द्वारा पालित-पोषित हैं। वर्तमान राजनेता जन-सेवक न होकर जन-शोषक ही बन गए हैं। भारतीय जनता के शोषण की ओर संकेत करते हुए डॉ० शशि जेकब कहते है कि - "प्रजातांत्रिक मूल्य का पतन हो चुका है। भारत की निरीह जनता शोषण का शिकार हो रही है।"[37]

अत: इस विवेचन से पता चलता हैं कि राजनीतिक समस्या भारत में स्वातंत्रतापूर्व की अपेक्षा स्वतंत्रता के पश्चात् अपना अधिक विस्तार कर चुकी है। राजनीतिक समस्या वर्तमान भारतीय नागरिक को असाधारण रीति से त्रस्त करती रही हैं। राजनीतिक समस्या के अंतर्गत विविध समस्याओं का समावेश होता हैं। वह निम्न प्रकार है -

1. भ्रष्टाचार की समस्या
2. राजनीतिक अनैतिकता की समस्या
3. राजनीतिक नैतिक मूल्यों का ह्रास / विघटन
4. दबाव - तंत्र की समस्या
5. पद एवं कुर्सी की अत्यधिक लालसा
6. देश विभाजन की समस्या
7. व्यक्तिगत स्वार्थ-पूर्ति की भावना
8. राजनेताओं की शक्ति-सत्ता-धन की मदांधता
9. 'जोड़-तोड़ नीति' के प्रयोग की समस्या
10. भाई-भतिजावाद की समस्या
11. जनता की दुर्बलता

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

12. आदर्शहीन दोगली नीति का अवलंब
13. नेताओं की अवसरवादी प्रवृत्ति
14. सही नेतृत्व का अभाव
15. वोट के क्रय-विक्रय की समस्या
16. संविधान के निमय-उपनियमों की समस्या
17. हड़ताल की समस्या
18. भ्रष्ट पुलिस व्यवस्था की समस्या
19. युद्ध की समस्या
20. दलबदलू नेताओं की समस्या
21. चुनाव की समस्या
22. सत्ता के दुरूपयोग की समस्या
23. राजनीतिक नेताओं के दौरे की समस्या
24. अंतर्गत दलीय राजनीति की समस्या
25. राजनेताओं के वेतन की समस्या
26. प्रांतवाद की समस्या
27. देश की सीमा-व्यवस्था की समस्या
28. भाषा पर आधृत राज्य निर्माण की समस्या
29. राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा की समस्या
30. राज्यभाषा की समस्या
31. निर्दलीय नेताओं की समस्या
32. दलबंदी की समस्या
33. दलों की बढ़ती संख्या की समस्या
34. उग्र राजनीतिक संगठनों की समस्या
35. जाति-धर्म-संप्रदाय पर आधृत राजनीति की समस्या

36. युद्ध की यंत्र-सामुग्री के अभाव की समस्या
37. व्यक्ति केंद्रित राजनीति की समस्या
38. राजनेताओं के जाल में फँसते बेरोजगार युवकों की समस्या
39. मोहभंग की स्थिति
40. प्रशासनिक व्यवस्था की समस्या
41. परकीय आक्रमण की समस्या
42. न्याय व्यवस्था की समस्या
43. रिश्वत की समस्या
44. शरणार्थीयों के पुर्नवसन की समस्या
45. आम-जनता के शोषण की समस्या
46. सिफारिश की समस्या
47. आचार-विचार-व्यवहार के स्वतंत्रता की समस्या
48. देश के स्वतंत्रता की समस्या
49. आतंकवाद की समस्या
50. आरक्षण की समस्या

इस प्रकार राजनीतिक समस्याओं की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही हैं। इन समस्याओं से बचना अथवा इन समस्याओं पर मात करते हुए सुचारू रूप से राजनीति का संचालन लगभग असंभव बनता जा रहा हैं। राजनीतिक चेतना का विकास होता जा रहा है, जिसके फलस्वरूप राजनीति में विविध समस्याएँ उपस्थित हो रही हैं।

राजनीति संबंधी विविध समस्याओं का प्रस्फुटन स्वातंत्र्योत्तर काल में हुआ हैं। इस संदर्भ में डॉ० कमला गुप्ता का मंतव्य द्रष्टव्य है - "स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् व्यक्ति की राजनीतिक चेतना विविध स्वार्थी प्रवृत्तियों के रूप में प्रस्फुटित हुई। सदा के लिए आपा-धापी ने राजनीतिक भ्रष्टाचार को जन्म दिया। भ्रष्टाचार के कारण प्रत्येक व्यक्ति निम्न और उच्च स्तर पर सत्तात्मक राजनीति की शतरंज में अपनी गोटी बैठाने के प्रयत्न में संलग्न हो गया।

व्यक्तिगत स्वार्थो ने दल-बदलू राजनीति को जन्म दिया राजनीतिक दलों के नेता एक के बाद दूसरा दल बदलते रहे। स्वतंत्रता पूर्व भारतीय जनता ने जो सपने संजोए थे, वे धराशायी हो गए। राजनीतिक हत्याएँ घेराव, हड़ताल, बंद और तथावत् प्रवृत्तिया, राजनीतिक अभिशाप के रूप में सामने आयी।"[38] अत: कहने की आवश्यकता नहीं कि, स्वतंत्रता के पश्चात् राजनीति में अमूलाग्र परिवर्तन हुआ जिससे विविध समस्याओं का उग्र रूप हमारे सामने प्रस्तुत हुआ।

कृष्णकुमार बिस्सा 'चंद्र' का मानना है कि - "अरस्तु के अनुसार मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है और हम जिस युग में रह रहे हैं, वह राजनीति का ही युग है। हमारे दैनिक जीवन में राजनीति की व्याप्ति का अनुमान इसी बातसे लगाया जा सकता है कि विज्ञान, साहित्य, धर्म, उद्योग, नीति, कूटनीति आदि क्षेत्रों तथा व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्वजनीन संबंधो में राजनीति की पैठ हो गयी है।"[39] ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं बचा हैं, जिसमें राजनीति ने अपना कदम ना रखा हो। इसी कारण समाज की विविध समस्याएँ, जो राजनीतिक से संबंधित हैं, उन्हें राजनीतिक समस्याएँ कहा जाता है।

हर देश अपना अलग-अलग अस्तित्व रखता है। हर देश या समाज की कुछ भिन्नताएँ होती हैं। इसी कारणवश एक देश की समस्या दूसरे देश की समस्या बन जाए, यह संभव नहीं है। हर देश की राजनीति अलग-अलग होती है। अत: हर देश या समाज की राजनीतिक समस्याएँ भी अलग-अलग होती हैं। एक देश के लिए जो चीज समस्या बन जाए वही चीज दूसरे देश के लिए समस्या बनेगी ही, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अत: हर देश या समाज की राजनीतिक समस्याएँ देश-काल-वातावरण के आधार पर भिन्न तथा परिवर्तनशील होती हैं।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि राजनीतिक समस्याओं का दायरा विस्तृत हैं। राजनीति से प्रभावित सभी क्षेत्र और राजनीति को प्रभावित करनेवाले सभी क्षेत्र इन सभी की समस्याओं का समावेश राजनीतिक समस्याओं के अंतर्गत किया जा सकता हैं। अत: राजनीतिक समस्या मनुष्य-जीवन को प्रभावित करनेवाली प्रमुख समस्या हैं।

2.4.1.4 आर्थिक समस्या :

वर्तमान मनुष्य-जीवन को सबसे अधिक प्रभावित करनेवाली अगर कोई चीज है, तो वह है - अर्थ। 'अर्थ' का मतितार्थ देते हुए 'हलायुकोश' में लिखा है - "[अर्थ + घञ] धनम्; 'अर्थेन बलवान सर्व: अर्थाद्भवति पण्ड़ित:' - इति हितोपदेशे। (867) अभिध्येय:, शद्वप्रतिपाद्य:, 'वागर्थाविव संपृक्तो वागर्थप्रतिपत्तये'- रघुवंशे (1-1)। कारणम्; अभिप्राय:, प्रयोजनं; वस्तु; द्रव्यं; पदार्थ: , विषय:।"[40] तो 'सरस्वती शद्वकोश' के अंतर्गत 'अर्थ' का मतितार्थ है - "संपत्ति, धन, वित्त, द्रव्य।"[41] डॉ० हरदेव बाहरी ने 'शिक्षक हिंदी शद्वकोश' में 'अर्थ' का मतितार्थ देते हुए लिखा है कि - "अभिप्राय, मतलब, प्रयोजन, काम, मामला, हेतु, धन संपत्ति, इंद्रियों के विषय, उपयोग, इच्छा, मूल्य।"[42] इन सभी 'अर्थ' के अर्थ को देखने के पश्चात् मालूम होता है कि 'अर्थ' के अनेक मतितार्थ हैं। किंतु हमें विवेच्य विषय के संदर्भ में 'अर्थ' इस शद्व का अर्थ - धन, संपत्ति, द्रव्य, वित्त के अर्थ में ही ग्राह्य हैं।

भारतीय दर्शन के अनुसार 'अर्थ' मानव जीवन के पुरूषार्थ चतुष्टयों में से एक हैं। "हमारी अर्थव्यवस्था ने हमें भयंकर आर्थिक विषमता के कगार पर खड़ा कर दिया है।"[43] फिर भी 'अर्थ' हमारा साधन है, साध्य नहीं हो सकता। 'अर्थ' स्वयं एक समस्या है, साथ ही समस्याओं की जड़ भी। अर्थाभाव से जिस तरह समस्याएँ पैदा होती हैं, उसी तरह अर्थ प्राप्ति के बाद भी समस्याएँ पैदा होती हैं। डॉ० पानेरी स्वतंत्रतापूर्व और स्वातंत्रोत्तर काल की आर्थिक स्थिति पर दृष्टिपात करते है कि - "गरीबों की स्थिति अब भी उसी प्रकार की है जैसे पहले थी। विभिन्न कानून बने, पर उनसे अमीरों का ही लाभ हुआ है।"[44] अत: आर्थिक समस्याएँ अब भी विद्यमान हैं। श्रीचंद्र सिंह गृहस्थी की समस्याओं के पीछे अर्थ को मानते हुए लिखते है कि - "आज की परिस्थितियों में गृहस्थी बसाना और उसे चलाना अपने आप में एक बड़ी समस्या बन गया है। इसके मूल में आर्थिक तंगदस्ती तो है ही......।"[45]

मनुष्य का जीवन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि स्थितियों पर अवलंबित होता हैं। उसमें सबसे अधिक महत्ता आर्थिक स्थिति की होती है; क्योंकि अर्थ पर

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

ही मनुष्य की सामाजिक प्रतिष्ठा तथा समाज-विकास केंद्रित होता है। इसीलिए मनुष्य जीवन या समाज़-जीवन के विकास का मानदंड अर्थ माना जाता है। अर्थोन्मुख दृष्टि के कारण वर्त मान मनुष्य की आर्थिक आशा-आकांक्षाएँ बढ़ती जा रही है और मनुष्य पूँछविहीन पशु-सा वर्तन कर रहा हैं। आर्थिक साधन संपन्न व्यक्ति सामाजिक प्रतिष्ठा को प्राप्त कर रहा है, किंतु सामान्य व्यक्ति तिरस्कृत और उपेक्षा का अधिकारी बन गया है। सभी समस्याओं का मूल अर्थ या अर्थ का असमान वितरण ही हैं। जिससे विविध समस्याएँ निर्माण हो रही है।

अंग्रेजों के काल में उत्पादन एवं उपयोग के प्राचीन भारतीय मान्यताएँ समाप्त हो चुकी थीं। अंग्रजों ने अपनी औपनिवेशिक शोषणकारी नीति के द्वारा भारतीय वित्त विदेश भेज दिया तथा जमींदारो तथा पूँजीपतियों को समर्थन दिया। परिणामस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था में विविध समस्याएँ निर्माण होने लगी। जब **1947** ई० में भारत देश स्वतंत्रता की खुशी मना रहा था, तब अर्थव्यवस्था के खोखलेपन का अंदाजा हुआ और देश की अर्थ व्यवस्था के सुधार के प्रयास होने लगे। किंतु अंग्रेजों द्वारा पालित कृषि, औदयोगिक, व्यापारिक नीतियों का पूर्णत: नाश न हो सका; वह स्वतंत्र भारत में बराबर पलती रही। जिससे भारतीय जनता को विभिन्न आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड रहा हैं। अब भी भारतीय अर्थव्यवस्था में कुछ कमियाँ दृष्टिगत होती हैं। परिणामस्वरूप अर्थ संबंधि विविध समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। वह आर्थिक समस्याएँ निम्नलिखित हैं -

1. गरीबी की समस्या
2. ऋण की समस्या
3. वेकारी की समस्या
4. आर्थिक असमान वितरण की समस्या
5. अर्थ की अत्यधिक लालसा की समस्या
6. वेरोजगारी की समस्या
7. आर्थिक भ्रष्टाचार की समस्या
8. आर्थिक शोषण की समस्या

9. महँगाई की समस्या
10. आय - व्यय की समस्या
11. बैकिंग व्यवस्था की समस्या
12. निम्न वर्ग की समस्या
13. मध्य वर्ग की समस्या
14. उच्च वर्ग की समस्या
15. पूँजीवादी प्रवृत्ति की समस्या
16. आर्थिक केंद्रिकरण-विकेंद्रिकरण की समस्या
17. आर्थिक मंदी की समस्या
18. वित्त-व्यवस्थापन की समस्या
19. भूख की समस्या
20. भिक्षुक की समस्या
21. व्यसनाधीनता की समस्या
22. ब्याज की समस्या
23. नागरीकरण की समस्या
24. औदयोगिकरण की समस्या
25. कृषि-व्यवस्थापन की समस्या
26. चलन वृद्धि की समस्या
27. रूपया और डॉलर के कीमत की समस्या
28. नौकरी के स्थायीत्व की समस्या
29. वर्ग संघर्ष की समस्या
30. मजदूरों के वेतन की समस्या
31. आर्थिक विषमता की समस्या
32. जमींदारी की समस्या

33. दलाली की समस्या

34. व्यापार की समस्या

उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त अन्य कई ऐसी समस्याएँ हैं, जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रीति से अर्थ से संबंधित हैं।

अर्थ के असमान वितरण से समाज मेंवर्ग व्यवस्था का प्रचलन होने लगा है। समाज में तीन वर्ग प्रमुख रूप से कार्यरत हैं - निम्नवर्ग, मध्यवर्ग, उच्चवर्ग। इनमें वर्ग संघर्ष होता रहा हैं। इसी वर्ग संघर्ष को लेकर साम्यवाद या समाजवाद का प्रतिपादन कार्ल मार्क्स ने किया, जिसे मार्क्सवाद भी कहा जाता है। वसंत सिरसीकर मानते है कि "संघर्षात्मक विचारधारा से साम्यवाद का जन्म हुआ।"[46] कार्ल मार्क्स ने पूँजी का केंद्रिकरण, श्रमजीवी वर्ग की बढ़ती दरिद्रता, अतिरिक्त मूल्य सिद्धांत, इतिहास की वस्तुवादी मीमांसा, वर्ग सिद्धांत, पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था में मंदी का संकट पर अपने विचार व्यक्त किये हैं।

आधुनिक काल में विकास के लिए आवश्यक शक्तियाँ उद्योग, व्यापार, विज्ञान में ही केंद्रित हैं। "आज के प्रगतिन्मुख जनजीवन में उन्नयन के सारे साधन अर्थ में निहित है।"[47] इसलिए मानव-जीवन में अर्थ की महत्ता अधिक है। डॉ॰ सारस्वत के नुसार - "अर्थ समाज की शिराओं में बहनेवाला वह रक्त है। जिसके द्वारा समाज की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक चेतना स्वस्थ रही है।"[48] अर्थाभाव में सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि स्थितियों में अस्वास्थ्य पैदा होता हैं। इसीलिए डॉ॰ किर्ति केसर का कहना है कि - "हमारे सभी सामाजिक संबंधो और पारिवारिक रिश्तों पर अर्थतंत्र हावी हो गया है।"[49]

अर्थाभावग्रस्त मनुष्य अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की परिपूर्ति करने में स्वयं को असमर्थ पा रहा हैं। अर्थ के विना उसे जो जानवरों से बदतर जीवन व्यतीत करना पड़ रहा हैं, वह उसे स्वीकृत नहीं हैं। इसीलिए वह अर्थ के पीछे पागल-सा भाग रहा है। फलस्वरूप "अब तक जीवन के लिए अर्थ की आवश्यकता समझी जाती थी और अब अर्थ के लिए जीवन साधन वन गया है।"[50] इस स्थिति को देश-विभाजन के द्वारा अत्यधिक हवा मिल गई, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय आर्थिक हानी ने विविध समस्याओं को निर्माण

किया। इसीलिए डॉ० बालकृष्ण गुप्त मानते है कि - "देश के विभाजन से भारत की आर्थिक हानि ही नहीं हुई अपितु देश की आर्थिक स्थिति और भी जटिल हो गई।"[51]

भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार स्तंभ या रीड़ की हड्डी कृषि रहा है। भारतीय अर्थव्यवस्था कृषिप्रधान अर्थव्यवस्था है। किंतु विविध कारणों से कृषि से जुड़े लोग शहर में जाकर बसने लगे, कृषि-व्यवसाय में गिरावट आने लगी। ग्रामीण लोग नौकरी की तलाश में शहर की ओर बढ़ने लगे, जिससे समस्याएँ अत्यधिक मात्रा में प्रखर रूप धारण करने लगी। द्वारिका प्रसाद गोयल का मानना है कि - "लघु कुटीर उद्योंगों के पतन ने इस ग्रामीण बेकारी की समस्या को जटिल बना दिया। इस कारण ग्रामों को छोडकर लोग नगरों की ओर आकर्षित हो गए। इस प्रकार नगरों में भी बेकारी की समस्या का सीधा विकास हुआ है।"[52] अत: विविध कारणों से ग्राम तथा शहर में आर्थिक समस्याएँ सृजित होने लगी।

अंतत: उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता हैं कि मनुष्य जीवन में अर्थ का क्या महत्त्व है? अर्थ से उत्पन्न समस्याएँ कौन-सी है ? मनुष्य-जीवन में जितनी अर्थ की गुरूता बढ़ती जाती है, उतनी ही अधिक समस्याएँ मनुष्य के सामने उपस्थित हो रही हैं। आए दिन आर्थिक समस्याओं कि संख्या उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होती हुई दृष्टिगोचर होती हैं।

2.4.1.5 धार्मिक समस्या :

समाज जीवन पर धर्म का प्रभाव किसी न किसी रूप में विद्यमान होता है। धर्म विरहित समाज की संकल्पना कल्पना ही प्रतीत होती है। संसार में शायद ही कोई समाज होगा, जिसका धर्म न होगा। धर्म क्या है? जानने के लिए धर्म का अर्थ जानना आवश्यक है।

1. **'भारतीय संस्कृति कोश'** - के अनुसार धर्म से तात्पर्य है कि - "भारत में धर्म की कल्पना की बड़ी विशेषता है। प्रत्येक पदार्थ का व्यक्तित्व जिस वृत्ति पर निर्भर है, वही उस पदार्थ का धर्म है। शास्त्र कहते है, धर्म वह है जिससे इन जीवन का अभुद्य हो और भावी जीवन में नि:श्रेयस की प्राप्ति हो।"[53]

2. **'राजस्थानी - हिंदी शब्द कोश'** - के अनुसार धर्म का अर्थ है - "गुण लक्षण, कर्तव्य, नीति, सदाचार और जन्म-मरण एवं ईश्वरादि गूढ़ तत्त्वों की विचारधाराओं का परंपरागत

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

संप्रदाय।"[54]

3. 'भारतीय संस्कृति कोश' (मराठी) - के अनुसार - " 'धरति लोकान् ध्रियते पुण्यात्मभि: इति वा' = जो लोगों को धारण करता हो अथवा जो पुण्यात्मा पुरूषों से धारण किया जाता हो, वह धर्म है।"[55]

उपर्युक्त 'धर्म' के अर्थ को जानने के पश्चात् कहा जा सकता है कि पुण्यात्मा व्यक्ति की वह प्रवृत्ति, जो कर्तव्य, नीति, सदाचार, गुण आदि से प्रेरित होकर व्यक्ति को अभुद्य तथा नि:श्रेयस की प्राप्ति करती है, वही धर्म है। धर्म पुरूषार्थ चतुष्टयों में से एक है। धर्म के अनुसार आचरण करते हुए अर्थ की प्राप्ति करना और अर्थ द्वारा कामनाओं की परिपूर्ति करते हुए मोक्ष को प्राप्त होना, ही मनुष्य जीवन का अंतिम लक्ष्य होता है। "...... धर्म वह है जो हम सबको एवं संपूर्ण विश्व को धारण करता है।"[56] तथा मनुष्य को सद्कर्म के प्रति अग्रेसर कराता है।

समकालीन परिवेश को देखने पर पता चला है कि उपर उल्लेखित धर्म विषयक विचार असंगत प्रतीत होते हैं। क्योंकि आज वर्तमान समय में धर्म विविध विसंगतियों, विक्षिप्त-विद्रूप प्रवृत्तियों से गुजर रहा हैं। आज धर्म ही समाज-कल्याण में बाधा उपस्थित कर रहा है। धर्म अपने विकृत रूप में सम्मुख आ रहा है। मनुष्य को समाज हितैषी बनाने के लिए जिस धर्म का प्रचलन हुआ था, वह अब रूढ़ि, परंपरा, कर्मकांड़ का पिटारा हो गया हैं। जो धर्म किसी अगोचर, अनंत सर्वशक्तिमान सत्य एवं तत्व पर आधृत होकर मनुष्य जीवन को नियमित, संयमी, सहनशील बनाता था, वही धर्म आज स्वयं विकृत अवस्थाओं से घसिटा जा रहा हैं।

विविध कारणों से धर्म प्रभावित होता है तथा धर्म से विविध क्षेत्र प्रभावित होने के कारण विविध धार्मिक समस्याएँ उद्भूत होती हैं धार्मिक समस्याएँ निम्नलिखित हैं -

1. सांप्रदायिकता की समस्या
2. मंदिर-मस्जिद की समस्या
3. जाति व्यवस्था की समस्या

4. धर्म सत्ता की समस्या
5. अंधविश्वास की समस्या
6. वाद-मतवादों की समस्या
7. धर्मनिरक्षेप समाज रचना की समस्या
8. धार्मिक विधि-विधानों की समस्या
9. धार्मिक विधि के लिए समय न निकालपाने की समस्या
10. तर्कसंगत धार्मिक विधि-संस्कारों का अभाव
11. धार्मिक परंपरा एक समस्या
12. अज्ञान की समस्या
13. धार्मिक शोषण की समस्या
14. मानवतावादी धर्म का अभाव-एक समस्या
15. मठ व्यवस्थापन की समस्या
16. मेलों की समस्या
17. संन्यासीयों की समस्या
18. धर्मगुरूओं की समस्या
19. बाह्याडंबरों की समस्या
20. व्रत, मनौती की समस्या

इस प्रकार धार्मिक समस्याओं की संख्या बढ़ती ही जा रही है।

आधुनिक वैज्ञानिक युग में मनुष्य जीवन में व्यस्त रहता है। उसे धार्मिक विधि-विधानों के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल रहा हैं। ग्रामीण लोगों की अपेक्षा शहरी लोग धार्मिक कार्यों को अत्यधिक कम समय में निपटाने में धन्यता मान रहे हैं। वर्तमान समय में अंधविश्वास, रूढ़ि, परंपरा आदि की मात्रा कम दिखाई दे रही हैं। इस संदर्भ में कथन द्रष्टव्य है कि - "समय के अनुसार धर्म के स्वरूप को बदलना ही चाहिए, अन्यथा नए-पुराने विचारों और दृष्टिकोणों के अंतर के फलस्वरूप संघर्ष अटल होगा।"[57] अत: नए और पुराने विचारों

के संघर्ष को टालने के लिए समयानुकूल धार्मिक परिवर्तन आवश्यक है, तभी धार्मिक समस्याओं से वचा जा सकता हैं।

धर्म उस तलवार की भाँति है, जो उचित मनुष्य के हाथों में जाने पर न्याय की पक्षधर बन जाती हैं और अनुचित मनुष्य के हाथों में जाने पर अन्याय की राह पर निकल पड़ती हैं। मानवता और नीतिप्रधान धर्म विश्व को करूणा, विश्वबंधुता, मानवता, प्रेम, दया, ममता के मार्ग पर अग्रेषित करता हैं। किंतु धर्म के ओट में सर्वहारा का शोषण करनेवाले धर्मगुरूओं की भी कमी नहीं है। इस संदर्भ में डॉ०किरण बाला लिखती है कि -"(कार्ल मार्क्स) उसकी मान्यता है कि धर्म एक अफीम की तरह है, जिसे खाकर जनता नशे में उंघती रहती है और अपने जीवन के कटु यथार्थ को भूल जाती है। भाग्यवादी होकर अपने उपर होनेवाले जुल्म, शोषण को बर्दाश्त कर लेती है। इसलिए धर्म एक प्रतिगामी तत्त्व है। सर्वहारा काम करता है। धर्म और संप्रदाय की ओट में पूँजीपति वर्ग बड़े ही आराम से सर्वहरा का शोषण करते है।"[58] अत: मार्क्स के अनुसार धर्म एवं ईश्वर सर्वहारा के शोषण का मार्ग हैं। वस्तुत: वर्तमान समय में "अब धार्मिक अनुष्ठान व्यक्तिगत अनुभूति और निजी परिसंस्कार का विधि-विधान न होकर प्रायोजित कार्यक्रम होते जा रहे हैं।"[59] अत: आज धर्म प्रदर्शन की चीज बनती जा रही है, जो अनुचित है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात हो जाता है कि धार्मिक समस्या निर्माण होने के लिए विविध कारक कारणमात्र हैं। इसी कारण विभिन्न धार्मिक समस्याएँ सृजित होती जा रही हैं। अत: धार्मिक समस्याएँ अनेक हैं, जो विश्वबंधुत्व, एकता, प्रेम, मानवता आदि के लिए बाधक हैं।

2.4.2 आध्यात्मिक - भौतिक के आधार पर :

आध्यात्मिक-भौतिक के आधार पर समस्याओं के दो भेद हो जाते हैं। जो निम्न प्रकार हैं -

2.4.2.1 आध्यात्मिक समस्या :

आध्यात्मिक समस्याओं को जानने के लिए 'आध्यात्मिक' का अर्थ जानना

आवश्यक है। 'आध्यात्मिक' शद्ब 'अध्यात्म' से बना है। इसके कोशगत अर्थ इस प्रकार हैं -

1. मानक हिंदी कोश : इसके अनुसार 'आध्यात्मिक' शद्ब का अर्थ हैं - "वि० [सं० अध्यात्म + ठञ् - इक] [भाव० आध्यात्मिकता] जिसमें आत्मा और ब्रह्म के संबंध तथा स्वरूप का विचार या विवेचन हो। अध्यात्म से संबंध रखनेवाला। भौतिक, लौकिक आदि से भिन्न। (स्पिरिचुअल)।"[60]

2. आधुनिक हिंदी शद्ब-कोश : इसके अनुसार 'आध्यात्मिक' शब्द का अर्थ है - "1 आध्यात्म संबंधी, 2 जिसमें ब्रह्म, आत्मा और जीव के स्वरूप का विवेचन हो; जो भौतिक या लौकिक न हो।"[61]

इन कोशगत अर्थो पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात हो जाता हैं कि - जिसमें आत्मा तथा परमात्मा या ब्रह्म के गुणों, स्वरूप, पारस्पारिक संबंध आदि का विवेचन, चिंतन, विचार किया जाता हैं, वह आध्यात्मिक कहलाता है। यह चितंन अध्यात्म से संबंधित होता है तथा भौतिक जगत् से भिन्न होता है। आध्यात्मिकता से संबंधित समस्या आध्यात्मिक समस्या कहलती है।

आध्यात्मिक समस्या संस्कृति, चिंतन-मनन, नैतिकता, आदि से संबंधित होती हैं। मानवी मूल्य, नैतिकता, धर्म आदि में जब व्यवधान उत्पन्न होता हैं, तो आध्यात्मिक समस्या निर्माण होती हैं। कुछ आध्यात्मिक समस्याएँ निम्न हैं -

1. नैतिकता की समस्या
2. मानवी मूल्यों का ह्रास
3. वाद-विवादों की समस्या
4. सांस्कृतिक भिन्नता की समस्या
5. मानवता का अभाव
6. मनोवैज्ञानिक समस्या
7. ईश्वर के प्रति अनास्था की समस्या
8. आध्यात्मिक बाह्याडंबरों की समस्या

9. धर्मांतरण की समस्या
10. सनातन प्रवृत्तियों की समस्या
11. प्रदर्शन-प्रियता की समस्या
12. विज्ञान और आध्यात्म के आपसी संघर्ष की समस्या
13. संवेदनशीलता के अभाव की समस्या
14. नीति-अनीति की समस्या
15. प्रेम संबंधों की समस्या

उपर्युक्त आध्यात्मिक समस्याओं के अतिरिक्त अन्य कई ऐसी समस्याएँ हैं, जिनका समाविष्ट आध्यात्मिक समस्याओं के अंतर्गत किया जा सकता हैं। यह समस्याएँ आंतरिक भी होती है।

अत: इस विवेचन से ज्ञात हो जाता है कि आध्यात्मिक समस्या अध्यात्म से संबंधित होती है तथा उनकी संख्या भी काफी हैं।

2.4.2.2 भौतिक समस्या :

आध्यात्मिक समस्याएँ प्राय: आंतरिक होती हैं, किंतु भौतिक समस्याएँ बाहरी जगत् से संबंधित होती हैं। भौतिक समस्या क्या होती है ? इस का उत्तर पाने के लिए हमें 'भौतिक' शब्द का अर्थ जानना आवश्यक है।

1. संक्षिप्त हिंदी शद्बसागर : 'भौतिक' का अर्थ है - "1 पंचभूत संबंधी। 2 पाँचों भूतो से बना हुआ। पार्थिव।3. शरीर संबंधी। शरीर का। 4 भूतयोनि का।"[62]

2. हिंदी शब्दसागर : इसके अनुसार 'भौतिक' शब्द से तात्पर्य है कि "1 पंचभूत संबंधी। 2 पाँचो भूतो से बना हुआ। पार्थिव। 3 शरीर संबंधी। शरीर का। 4 भूतयोनि से संबंध रखनेवाला।"[63]

इन कोशगत अर्थों से परिचित होने पर 'भौतिक' शद्ब का सर्वसमावेशक अर्थ है कि - जो पंचभूतों - अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी, जल - से संबंधित हो अथवा इनसे निर्मित हो, वह भौतिक है। इस भौतिक जगत् से संबंधित समस्याएँ ही भौतिक समस्या के अंतर्गत

समाविष्ट होती हैं।

भौतिक समस्याओं की संख्या अधिक मात्रा में हैं। इन में से कुछ भौतिक समस्याओं का उल्लेख निम्नलिखित हैं।

1. आर्थिक समस्या
2. नारी समस्या
3. पारिवारिक समस्या
4. राजनीतिक समस्या
5. धार्मिक समस्या
6. सांस्कृतिक समस्या
7. आबादी की समस्या
8. सामाजिक समस्या
9. दहेज प्रथा की समस्या
10. विधवा समस्या
11. देश - विभाजन की समस्या
12. आतंकवाद की समस्या
13. जाति भेद की समस्या
14. वर्ण भेद की समस्या
15. वर्ग संघर्ष की समस्या

भौतिक समस्याएँ यथार्थ जगत् से संबंधित होती हैं। फलस्वरूप दृष्टिगत होता हुआ कठोर यथार्थ उन समस्याओं से सम्मुख उपस्थित हो जाता हैं। इन समस्याओं के परिपार्श्व में स्वस्थ, सुंदर, समाज बनाने की प्रेरणा होती हैं। यहीं समस्याएँ 'सत्यं शिवं सुंदरम' समाज निर्माण में बाधा बनती हैं, जिससे समाजोन्नति की गति रुकती नहीं, किंतु अवरुद्ध अवश्य बन जाती हैं। इन समस्याओं के निर्माण में विषमता, अन्याय, शोषण आदि का प्रमुख सहभाग रहा हैं।

पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावस्वरूप भारतीय संस्कृति में भौतिक सुख-सुविधाओं के प्रति अत्यधिक मात्रा में आकर्षण बढ़ता जा रहा हैं। जिसके कारण भारतीय जनजीवन पर भौतिक समस्याओं की छाया पड़े बिना नहीं रह सकी हैं। इन समस्याओं से पराड़मुख नहीं हुआ जा सकता हैं। उनकी संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रहीं हैं।

अत: समस्याओं को दो भागों में इस तरह बाँटा जाता हैं - आध्यात्मिक समस्या एवं भौतिक समस्या। आध्यात्मिक समस्या प्राय: आंतरिक होती है, तो भौतिक समस्या बाह्य से संबंधित हाती है। किंतु आध्यात्मिक और भौतिक जगत् के पारस्पारिक प्रभाव के कारण एवं आध्यात्मिक समस्या और भौतिक समस्या के पास्पारिक प्रभाव के फलस्वरूप समस्या उद्भूत होती हैं।

2.4.3 उद्भव के आधार पर :

समस्याओं के उद्भव के कारण विविध होते हैं। हर समस्या के उद्भव के पार्श्व में कोई-न-कोई कार्य-कारण छिपा होता हैं। इसी कारण विभिन्न समस्याओं के उद्भव में विभिन्न कारण कार्यरत होते हैं। इनकी संख्या अधिक मात्रा में हैं। किंतु उद्भव के आधार पर उनके प्रमुख दो भेद किये जा सकते हैं। वह निम्न हैं -

2.4.3.1 प्राकृतिक अथवा प्रकृतोद्भावित समस्या :

'प्राकृतिक' इस शद्व की उत्पत्ति 'प्राकृत' शद्व से हुई है। 'प्राकृतिक' का कोशगत अर्थ इस प्रकार हैं -

1.भाषा-शद्व कोष: इसके अनुसार 'प्राकृतिक' से तात्पर्य है कि - "प्रकृति का, प्रकृतिजन्य, प्रकृति-संबंधी, स्वाभाविक, नैसर्गिक, सहज, कुदरती। भूगोल का वह भाग जिसमें पृथ्वी की बनावट, वर्तमान स्थिति, तथा स्वाभाविक दशाओं का वर्णन हो।"[64]

2.सरस्वती शद्वकोश: इसके अनुसार 'प्राकृतिक' का अर्थ है कि -"स्वाभाविक; स्वभावसिद्ध। मायावी; कपटी।"[65]

अत: ज्ञात हो जाता है कि प्रकृति द्वारा निर्मित; प्रकृति से संबंधित जो सभी स्वाभाविक, नैसर्गिक, सहज, कुदरती कार्य हैं, वह प्राकृतिक के अंतर्गत समाविष्ट होते हैं और

प्राकृतिक घटनाओं से संबंधित समस्याओं का समावेश प्राकृतिक समस्याओं के अंतर्गत होता हैं।

प्राकृतिक समस्याओं से सबसे अधिक मात्रा में ग्रामीण, आँचलिक लोगों को सामना करना पड़ता हैं। अनेक प्राकृतिक प्रकोप निर्माण होते हैं और प्रकोप पीड़ितों के लिए शासन द्वारा राहत सामुग्री भी दी जाती हैं। किंतु इस राहत सामुग्री से प्राकृतिक समस्या समाप्त नहीं होती। इसीलिए विवेकी राय लिखते हैं कि - "एक साल का अच्छी तरह डूबा जीवन कई साल तक साँस नहीं ले पाता।"[66]

प्राकृतिक समस्याएँ प्रकृति-जन्य होने के बावजूद उसके परिणामों का सामना मनुष्य को ही करना पड़ता हैं। प्राकृतिक समस्याएँ निम्न हैं -

1. बाढ़ की समस्या
2. त्सुनामी की समस्या
3. अकाल की समस्या
4. तापमान वृद्धि की समस्या
5. क्षारयुक्त जल की समस्या
6. नदी की बढ़ती कक्षा-एक समस्या
7. भूकंप की समस्या
8. वढ़ते रेगिस्तान (वालूकामय प्रदेश) की समस्या
9. बिमारी की समस्या
10. हिमवृष्टि की समस्या

उपर उल्लेखित समस्याओं के अतिरिक्त अन्य कई समस्याएँ प्राकृतिक समस्याएँ हैं, जिनकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही हैं।

अत: विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्रकृति द्वारा उद्भूत समस्याएँ प्राकृतिक समस्याओं के अंतर्गत आती हैं।

2.4.3.2 मानवनिर्मित अथवा समाजोद्भावित :

मानवनिर्मित समस्या को समाजोद्भावित समस्या अथवा मानवीय समस्या कहा जा सकता है। जिस तरह प्राकृतिक समस्या प्रकृतोद्भावित होती है, उसी तरह समाजोद्भावित समस्या समाज द्वारा या मानव द्वारा निर्मित होती है। मानव द्वारा ही जिस समस्या का निर्माण होता है या किसी समस्या के सृजन के पार्श्व में मानव कारणमात्र बन जाता है, उस समस्या को मानवनिर्मित या समाजोद्भावित समस्या कहा जाता है।

हर मनुष्य समस्या से मुक्ति की कामना करता है। किंतु वह मुक्त होने की अपेक्षा स्वयं ही समस्या के जाल में उलझकर स्वयं के लिए समस्या निर्माण करता है। मानव तो समाज की एक इकाई मात्र है। कभी-कभी समाज द्वारा बनाए गए बंधन ही मनुष्य के लिए समस्या बन जाते हैं। इस तरह मानवनिर्मित या समाजोद्भावित समस्याओं का प्रादुर्भाव मनुष्य जीवन में निरंतर होता रहता हैं।

मानवनिर्मित समस्याओं का अध्ययन करने के लिए मानवनिर्मित या समाजोद्भावित समस्याओं पर दृष्टिपात करना आवश्यक हैं। वह निम्न हैं -

1. दहेज की समस्या
2. विधवा विवाह की समस्या
3. प्रदूषण की समस्या
4. पारिवारिक समस्या
5. वेश्या समस्या
6. नारी समस्या
7. भ्रष्टाचार की समस्या
8. जनसंख्या वृद्धि की समस्या
9. मद्यपान की समस्या
10. प्रदर्शन प्रियता की समस्या
11. परंपराओं की समस्या

12. सांप्रदायिकता की समस्या
13. दलबंदी की समस्या
14. युद्ध की समस्या
15. भाषावाद की समस्या

इस प्रकार मानवनिर्मित समस्याओं की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही हैं। वर्तमान समय में मानव के सम्मुख विविध समस्याएँ हैं, जिनमें से अधिकतर समस्याएँ मानवनिर्मित या समाजोद्भावित हैं।

अत: प्राकृतिक समस्या नैसर्गिक अथवा प्रकृतिजन्य होती है, तो समाजोद्भावित समस्या समाज द्वारा निर्मित होती है। किंतु दोनों तरह की समस्याओं का (प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष) सामना समाज या मानव को ही करना पड़ता है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात हो जाता है कि समस्या के उद्भव के आधार पर समस्या के प्रकृतोद्भावित समस्या और समाजोद्भावित समस्या दो भेद हो जाते हैं।

2.4.4 अंतरंग - बहिरंग के आधार पर :

मनुष्य के अंतरंग और बहिरंग के आधार पर समस्या के भेद किए जा सकते हैं। वे भेद इस प्रकार हैं -

2.4.4.1 अंतरंग समस्या अथवा आंतरिक समस्या:

मनुष्य के अंतर्जगत् बहिरंग के विविध कारकों से प्रभावित होता हैं। अंतर्जगत् में मनुष्य का चिंतन, मनन, विचार-विमर्श होता रहता हैं। इसी अतंरंग या अंतर्जगत् से संबंधित समस्या को अंतरंग समस्या कहा जाता है। यह समस्या व्यक्ति के अंतरंग से संबंधित होने के कारण इसे व्यक्तिगत समस्या कहा जाता है। इस समस्या में वैयक्तिकता अथवा निजत्व होने के कारण इसे वैयक्तिक समस्या भी कहा जाता है।

अंतरंग समस्या अथवा वैयक्तिक समस्या व्यक्ति-सापेक्ष होती है। अर्थात् वैयक्तिक समस्या व्यक्तिपरत्वे भिन्न-भिन्न होती हैं। हर व्यक्ति की अपनी निजी समस्याएँ होती हैं, जो वैयक्तिक समस्या के अंतर्गत समाविष्ट हो जाती है। अत: जितने व्यक्ति

अस्तित्व में है, उतनी या उनसे भी अधिकमात्रा में समस्याओं की संख्या विद्यमान है। इसी कारण अंतरंग समस्याओं की कतार लंवी हैं। कुछ अंतरंग समस्याएँ निम्नांकित हैं -

1. क्रोध की समस्या
2. ईर्ष्या भावना की समस्या
3. द्वेष भावना की समस्या
4. मोह की समस्या
5. पागलपन की समस्या
6. घुटन की समस्या
7. अकेलेपन की समस्या
8. चिंतन-मनन की समस्या
9. अज्ञान की समस्या
10. चारित्रिक पतन की समस्या
11. ईच्छा-आकांक्षाओं की समस्या
12. भूख की समस्या
13. प्रेम की समस्या
14. स्वार्थी प्रवृत्ति की समस्या
15. नैतिकता के अभाव की समस्या

इन समस्याओं की संख्या वृद्धिंगत होती जा रही है। आंतरिक समस्या प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रीती से मनोविज्ञान से संबंधित होती है। मनोवैज्ञानिक समस्याओं का भी अंतर्भाव आंतरिक समस्याओं के अंतर्गत होता है।

अत: विवेचन से ज्ञात होता है कि आंतरिक समस्या मनुष्य के अंतर्जगत् से संबंधित होती है।

2.4.4.2 बहिरंग समस्या अथवा बाह्य समस्या :

अंतरंग या आंतरिक समस्या अंतर्जगत् से संबंधित होती है, उसी तरह बाह्य

समस्या अथवा बहिरंग समस्या बाह्यजगत् से संबंधित होती है। बाह्यजगत् का विस्तार असीम है। जिसके फलस्वरूप बाह्यसमस्या की मात्रा भी अंतरंग समस्या की अपेक्षाकृत अधिक है। बाह्य समस्या भौतिक जगत् से संबंधित है। अत: बाह्य समस्याओं का सामना प्रत्यक्ष रूप से किया जा सकता हैं। बाह्य समस्याओं की संख्या अनगिनत होने के बावजूद कुछ बाह्य समस्याएँ निम्न रेखांकित हैं -

1. विधवा विवाह की समस्या
2. भूकंप की समस्या
3. अर्थार्जन की समस्या
4. सांप्रदायिकता की समस्या
5. आतंकवाद की समस्या
6. अवर्षण की समस्या
7. बालमजदूरों की समस्या
8. भाई - भतिजावाद की समस्या
9. भ्रष्टाचार की समस्या
10. दलबदलू नेताओं की समस्या
11. आंदोलनों की समस्या
12. बेकारी की समस्या
13. जनसंख्या वृद्धि की समस्या
14. चलन वृद्धि की समस्या
15. वर्ग-वर्ण भेद की समस्या

इस प्रकार बाह्य समस्याओं की संख्या दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही हैं।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात हो जाता है कि आंतरिक समस्या अंतरंग से संबंधित होती है, तो बाह्य समस्या बहिरंग से। किंतु अंतरंग का प्रकट रूप हमें बहिरंग में देखने को मिलता है, क्योंकि अंतरंग और बहिरंग परस्परावलंबी होते हैं। अत: आंतरिक समस्याओं तथा

बाह्य समस्याओं का पारस्पारिक प्रभाव दृष्टिगत होता हैं।

2.4.5 क्षेत्र - नामकरण के आधार पर :

वर्तमान समय में विविध क्षेत्रों का विकास हो रहा हैं। जिस क्षेत्र में जो समस्या निर्माण हो जाती हैं, उसी क्षेत्र के नाम के आधार पर उस समस्या का नामकरण किया जा सकता है। इसे ही क्षेत्र-नामकरण के आधार पर समस्याओं के प्रकार कहा जा सकता हैं। क्षेत्रों की संख्या अधिक होने के कारण क्षेत्र-नामकरण के आधार पर समस्याओं की संख्या भी अधिक हैं। वह निम्न हैं -

1. देश-विभाजन की समस्या
2. नारी-जीवन की समस्या
3. पारिवारिक समस्या
4. भाषा की समस्या
5. मनोवैज्ञानिक समस्या
6. जनसंख्या वृद्धि की समस्या
7. औद्योगिकरण की समस्या
8. सांप्रदायिकता की समस्या
9. वर्ग-वुर्ण व्यवस्था की समस्या
10. शिक्षा व्यवस्था की समस्या
11. मद्पान की समस्या
12. शहरीकरण की समस्या
13. फैशन की समस्या

इस प्रकार जितने विविध क्षेत्र मौजूद हैं, उतने क्षेत्र-नामकरण के आधार पर समस्याओं के प्रकार संभव है। विविध क्षेत्रों की तरह इस प्रकार की समस्याओं की संख्या वृद्धिंगत होती जा रही हैं।

अंतत: उपर्युक्त विविध आधारों पर समस्याओं के प्रकार या वर्गीकरण किये जा सकते हैं। किंतु क्षेत्र नामकरण के आधार पर किये गए प्रकारों के अतिरिक्त अन्य आधारों पर किये गए प्रकारों अथवा वर्गीकरणों पर दृष्टिपत करने से ज्ञात होता हैं कि वे आपस में घुलमिल जाते है। जिससे वे जटिलता निर्माण करते है। क्षेत्र-नामकरण के आधार पर वर्गीकृत समस्याएँ सरल, स्वाभाविक, सहजता से युक्त होने के कारण जटिलतामुक्त हैं।

2.5 समस्या और साहित्य का पारस्पारिक संबंध :

वर्तमान युग 'समस्या युग' से संबोधित करने योग्य है। समाज जीवन के अविभाज्य मूलभूत अंग के रूप में समस्या को मानना अनुचित नहीं है। समस्याविहीन मानवजीवन के अस्तित्व की संकल्पना करना निरी-कोरी कल्पना है।साहित्य समाजशील प्राणी-मानव के द्वारा प्रतिफलित होता है। इसी कारणवश मनुष्य अपनी समकालीन परिवेशगत समस्याओं का चित्रण करते हुए साहित्य का सृजन करता हैं। मानव-जीवन एवं समाज ही साहित्य का आधार हैं। "यदि वह (साहित्य) जीवन से अलग हो जाए तो साहित्य, साहित्य न रहकर मनोरंजक कलाबाजी ही रह जाएगा।"[67] अत: साहित्य मनुष्य जीवन तथा उसकी समस्याओं से प्रसूत होता हैं।

जटिल समस्याओं से युक्त मनुष्य तथा समाज से पूर्णत: पराड़मुख होकर कोई भी साहित्यकार अपनी अभिव्यक्ति नहीं कर सकता। वह किसी न किसी रूप में समस्याओं की अभिव्यंजना करता हैं। "साहित्य आज जटिलता से पूर्ण नहीं, अपितु जीवन की समस्याओं का सामना करने का और उसे चित्रित करने का साहस उसमें है।"[68] अत: साहित्य में जीवन की समस्याओं का सामना करने एवं चित्रित करने का सामर्थ्य हैं। डॉ० विमला भास्कर का मानना है कि "......आज समस्याओं से विलग होकर न तो कोई साहित्यकार ही जीवित रह सकता है और न ही कोई कृति ही महानता का दंभ कर सकेगी।"[69]

किशोर गिरडकर साहित्य समस्याओं को अवश्यंभावी मानते हैं - "साहित्य में जनमानस और जन-जीवन का आलेख होता है और चूँकि आज समस्याएँ ही जीवन का पर्याय बन गई हैं, अत: साहित्य में उनका चित्रण अवश्यंभावी हो जाता है।"[70] संवेदनशील

SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

साहित्यकार के मन-मस्तिष्क को समस्याग्रस्त समाज की पीड़ा, दु:ख, छटपटाहट इस भाँति झकझोरं कर चिंतन-मनन के लिए उद्वेलित करती हैं कि साहित्यकार समसामायिक समस्याओं की अभिव्यंजना करते हुए अपनी ओर से उनका समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास करता हैं। समसामायिक परिवेश के प्रति जागृत रह कर अपने साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति करना ही साहित्यकार का दायित्व बनता है।

जीवन की विसंगतियों, विकृतियों आदि को साहित्य अपना उपजीव्य बनाता रहा हैं।फलस्वरूप साहित्य में जीवन की समस्याओं का चित्रांकन अनिवार्य हो गया हैं। यहीं वर्तमान समय की माँग है। जीवन की समस्याओं पर दृष्टिपात करते हुए समाज में जागृति एवं स्फूर्ति का संचार कराना साहित्य का महत्वपूर्ण कार्य हैं। सच्चा साहित्य किसे कहते है ? इसे जानने के लिए डॉ० रमेश देशमुख का कथन देखना आवश्यक है। वे सच्चे साहित्य की परिभाषा देते है कि - "जो साहित्य सामाजिक. राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं पर प्रकाश नहीं डालता तथा उनकी उलझनों को सुलझाने में सहायता नहीं करता वह सच्चा साहित्य नहीं है।"[71] अत: जो साहित्य समाज, देश, विदेश की समस्याओं पर दृष्टिपात करते हुए समाधान प्रस्तुत करता है, वही सच्चा साहित्य हैं।

हिंदी साहित्य में समस्या प्रधान साहित्य की परंपरा लंबी है। समस्या प्रधान उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, काव्य आदि का निर्माण हिंदी में समय-समय पर होता रहा है। प्रेमचंद, यशपाल, मन्नू भंडारी, डॉ० राज बुद्धिराजा, कृष्णा सोबती, राजेंद्र यादव आदि साहित्यकारों ने समस्याओं को अपने साहित्य में उद्घाटित कर समाज जागृति का कार्य किया हैं।

इस विवेचन से ज्ञात हो जाता है कि समस्या और साहित्य का पारस्पारिक संबंध अत्यधिक नजदीक का होता है।

2.6 समस्या - प्रधान साहित्य का महत्व :

साहित्य सृजन करनेवाला साहित्यकार समाज की ही इकाई होता है। वह अपने समकालीन समाज की समस्याओं के प्रति उदासीन नहीं रह सकता। वह उनका अनुभव

करता है और अभिव्यक्ति भी करता है। "अच्छा साहित्यकार सृष्टा दोनों का काम करता है। साहित्यकार और कवि जीवन के शुष्क इतिवृत्त उसे याने मानव को निकालकर सरसता को स्रोत प्रवक्ति के लिए एक सामायिक समस्याओं का चित्रण सदैव करता ही रहा है।"[72] अत: समस्या-प्रधान साहित्य की एक विशेषता है कि - साहित्य में समस्या शुष्कताविहिन, सरस रूप में अंकित होती है।

समस्या-प्रधान साहित्य की दूसरी विशेषता के रूप में डॉ॰ भास्कर का कथन द्रष्टव्य है - "देश और समाज की बदलती हुई स्थितियों में संक्राति युगोन संभावित जघन्यता, भ्रष्टाचार, बेईमानी, स्वार्थ, लोलुपता, घोर व्यक्तिवादिता, अहं कुंठाओं, काम अतृप्तिओं और खंड़ित व्यक्तित्ववाले मानव समूहों के बीच जीवन के नये मानव, नये नैतिकमान, आस्था के नये स्तंभो, विश्वास के नये आधारों तथा देश और मानवता को नई भव्यता, सुंदरता और संपन्नता प्रदान करने के लिए आकुल और प्रयत्नवान, दृढ़ आस्थावान, विश्वासी मानवीय चरित्रों को गढ़ने में सलग्न है।"[73]

साहित्यकार अपने जीवन की अनुभूति की अभिव्यक्ति साहित्य में करता है। इसके साथ साहित्यकार की समस्याएँ भी अंकित होती हैं। अत: समस्या प्रधान साहित्य की अन्य विशेषता है कि समस्या-प्रधान साहित्य में साहित्यकार की समसामायिक समस्या अंकित होने से उसके समकालीन परिवेश का ज्ञान हो जाता है।

समस्या-प्रधान साहित्य समाज को गलत रास्ते पर अग्रेसर होने से बचाने का प्रयास करता है। मानव को कुंठा, शुद्रता, संकीर्णता आदि से उपर उठाकर उनसे मुक्ति का मार्ग दिखाता हैं।

समस्या का हल देणे का कार्य साहित्यकार साहित्य में करता हैं, इससे प्रेरणा, स्फूर्ति ग्रहण कर समाज परिवर्तन की कोशीश की जाती रही हैं। इसी कारण भी समस्या-प्रधान साहित्य का महत्व है।

हिंदी के अनेक साहित्यकारों प्रेमचंद, यशपाल, डॉ. राज बुद्धिराजा, इलाचंद्र जोशी, मन्नू भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा, कृष्णा सोबती आदि ने समस्याओं को अपने साहित्य में दी

है। जिसके कारण समाज परिवर्तन होने में काफी मदत होती रही है। स्वतंत्रतापूर्व काल में साहित्य में तत्कालीन समस्याओं के चित्रण के फलस्वरूप स्वतंत्रता के लिए समाज उत्तेजित हुआ और स्वतंत्रता प्राप्त की। इसमें साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान रहा।

अंतत: उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि समस्या-प्रधान साहित्य समाज के लिए अनन्यसाधारण महत्व रखता है तथा समाज परिवर्तन की क्षमता रखता है।

निष्कर्ष :

द्वितीय अध्याय के निष्कर्ष रूप में निम्न तथ्य सन्मुख उपस्थित होते हैं - 'समस्या' से अभिप्राय है कि 'कठिन तथा दुर्बोध उलझनवाली चिंतनीय बात'। इसे विद्वानों ने परिभाषा बद्ध करते हुए द्वंद्वात्मक स्थिति से गुजरनेवाली प्रक्रिया बताया हैं। समस्या का स्वरूप एवं व्याप्ति असीम विस्तृत है।

सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक के आधार पर समस्या के उतने ही प्रकार होते हैं। आध्यात्मिक-भौतिक के आधार पर समस्या के दो भेद होते है - आध्यात्मिक समस्या और भौतिक समस्या। उद्भव के आधार पर भी समस्या को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है - प्रकृतोद्भावित समस्या एवं समाजोद्वभावित समस्या। अंतरंग-बहिरंग के आधार पर समस्या को आंतरिक समस्या तथा तथा बाह्य समस्या में विभाजित किया जा सकता हैं। क्षेत्र-नामकरण के आधार पर समस्या के विविध प्रकार किये जाते हैं। अत: समस्या के विविध आधारों पर आधृत विभिन्न प्रकार होते हैं।

समस्या और साहित्य का संबंध निकट का होता है। समस्याविहिन साहित्य की कल्पना असंभव प्रतीत होती है। समस्या-प्रधान साहित्य में समस्या शुष्कताविहीन, सरस रूप में अंकित होती है। साथ-साथ आकुल, आस्थावान, विश्वासी मानवीय चरित्रों के निर्माण में समस्या-प्रधान साहित्य पूर्णत: सफल होता हैं। अत: विविध कारणों से समस्या-प्रधान साहित्य का महत्व तथा सामाजिक उपादेयता बनी रहती हैं।

अंतत: कहा जा सकता है कि, निसंदेह समस्या द्वंद्वात्मक स्थिति से गुजरनेवाली वह प्रक्रिया है, जिसके विभिन्न आधारों पर आधृत अनेक प्रकार होते हैं; जिसका

साहित्य से अभिन्न संबंध होने के साथ-साथ ही समस्या-प्रधान साहित्य की सामाजिक उपादेयता भी चिरंतन होती है।

संदर्भ सूची :

1. मूल संपादक श्यामसुंदरदास - हिंदी शब्दसागर, दसवाँ भाग, पृ० **4967**
2. संपा० श्री नवलजी - नालंदा विशाल शब्दसागर, पृ० **1407**
3. संपा० राजा-राधाकांत देव-शब्दकल्पद्रुम, पंचमो भाग : पृ० **300**
4. संपा० डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' - भाषा-शब्द कोष, पृ० **1521**
5. संपा० नगेंद्रनाथ बसु - हिंदी विश्वकोश, भाग **23**, पृ० **568.**
6. संपा० सत्य प्रकाश-मानक अंग्रेजी - हिंदी कोश, पृ० **1071**
7. संपा० सत्यपाल गुप्त-अभिनव पर्यायवाची कोश, पृ० **352**
8. Edited by James A०H० Murray, Henry Bradley, W०A० Craigie, C०T० oninons - THE OXFORD ENGLISH DICTIONARY, VOL० VIII० P० 1403
9. डॉ० विमला भास्कर - हिंदी में समस्या साहित्य, पृ० **9**
10. मूल संपा० श्यामसुंदरदास - हिंदी शब्दसागर, दसवाँ भाग, पृ० **4967**
11. डॉ०विमला भास्कर - हिंदी में समस्या साहित्य, पृ० **90**
12. राम अहुजा - सामाजिक समस्या, पृ० **29**
13. डॉ० गणपतिचंद्र गुप्त - साहित्यिक निबंध, पृ० **394**
14. प्रा० किशोर गिरडकर - मन्नू भंडारी का कथा साहित्य, पृ० **83**
15. आलोचना- **3**,जनवरी-मार्च **1968** इलाचंद्र जोशी- 'युग की समस्या और साहित्यकार' पृ० 71.
16. डॉ० ज्ञान अस्थाना- हिंदी कथा साहित्य : समकालीन संदर्भ, पृ० **45**
17. डॉ० मान्धाता ओझा - हिंदी समस्या - नाटक, पृ० **40**
18. जैनेंद्रकुमार - मन अगस्त में प्रकाशित लेख 'शक्ति और नीति' पृ० **75**

19. डॉ० सीलम वेंकटेश्वरराव- यशपाल के उपन्यास : समस्यामूलक अध्ययन, पृ० 26

20. डॉ० विमला भास्कर - हिंदी में समस्या साहित्य, पृ० 10

21. वही, पृ० 16

22. वही, पृ० 10

23. डॉ० गिरिराज शर्मा 'गुंजन' - हिंदी नाटक मूल्य संक्रमण पृ० 173

24. डॉ० हेमेंद्र पानेरी - स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास : मूल्य संक्रमण, पृ० 2

25. डॉ० राम अहुजा - सामाजिक समस्या, पृ० 2

26. डॉ० सुनंदा पालकर - समजवादी उपन्यासकार भैरवप्रसाद गुप्त, पृ० 262

27. डॉ० विमला भास्कर - हिंदी में समस्या साहित्य, पृ० 42

28. डॉ० राजपाल शर्मा - हिंदी वीर काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, पृ० 40

29. प्रा० वसंत वैद्य - भारतीय सामाजिक समस्या, पृ० 2

30. डॉ० एम० के० गाडगील - हिंदी एकांकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, पृ० 171

31. प्रभा वर्मा - हिंदी उपन्यास: सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया और स्वरूप, पृ० 132

32. गिरधर राठी - द्विमासिक पत्रिका समकालीन भारतीय साहित्य, पृ० 132

33. प्रभा वर्मा - हिंदी उपन्यास: सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया और स्वरूप, पृ० 10

34. डॉ० पीतांबर सरोदे - आधुनिक हिंदी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना, पृ० 53

35. डॉ० रमेश देशमुख - आठवें दशक की हिंदी कहानी में जीवन मूल्य, पृ० 145

36. वही, पृ० 147

37. डॉ० शशि जेकब - महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता पृ० 81

38. डॉ० कमला गुप्ता - हिंदी उपन्यास में सामंतवाद, पृ० 324

39. कृष्णकुमार विस्सा 'चंद्र' - साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में राजनैतिक चेतना, प्रस्तावना से उद्धृत

40. संपा॰ जयशंकर जोशी - हलायु कोश : पृ॰ 34

41. विदयाधर वामन भिडे - सरस्वती शद्बकोश भाग 1, पृ॰ 95

42. डॉ॰ हरदेव बाहरी - शिक्षक हिंदी शद्बकोश, पृ॰ 33

43. डॉ॰ रमेश देशमुख-आठवें दशक की कहानी में जीवन मूल्य, पृ॰ 111

44. डॉ॰ हेमेंद्रकुमार पानेरी-स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास : मूल्य संक्रमण पृ॰ 228

45. डॉ॰ श्रीचंद्र सिंह - आधुनिक हिंदी उपन्यास साहित्य में चित्रित समस्याएँ पृ॰ 228

46. वसंत सिरसीकर - राज्यशास्त्र आणि शासन संस्था, पृ॰ 226

47. डॉ॰ ज्ञान अस्थाना - हिंदी कथा साहित्य : समकालीन संदर्भ, पृ॰ 29

48. डॉ॰ ओमप्रकाश सारस्वत - बदलते मूल्य और आधुनिक हिंदी नाटक, पृ॰ 190

49. डॉ॰ कीर्ति केसर - समकालीन कहानी के विविध संदर्भ, पृ॰ 39

50. डॉ॰ कमला गुप्ता - हिंदी उपन्यास में सामंतवाद पृ॰ 324

51. डॉ॰ बालकृष्ण गुप्त - हिंदी उपन्यास सामाजिक संदर्भ, पृ॰ 43

52. द्वारिका प्रसाद गोयल - भारतीय सामाजिक समस्याएँ, पृ॰ 487

53. लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय' - भारतीय संस्कृति कोश पृ॰ 453

54. संपा॰ आ॰ बदरीप्रसाद साकरिया प्रो॰ भूपतिराम साकरिया - राजस्थानी हिंदी शद्बकोश, प्रथम खंड, पृ॰ 640

55. संपा॰ पं॰ महादेवशास्त्री जोशी - भारतीय संस्कृति कोश (मराठी) खंड 4, पृ॰ 558

56. डॉ॰ हेमेंद्रकुमार पानेरी - स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास : मूल्य संक्रमण, पृ॰ 264

57. डॉ॰ एम॰ के॰ गाडगील - हिंदी एकांकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, पृ॰ 171

58. डॉ॰ किरण बाला - समकालीन हिंदी कहानी और समाजवादी चेतना, पृ॰ 264

59. विजय अग्रवाल - अपने आस-पास, पृ॰ 34

60. प्रधान संपा॰ रामचंद्र वर्मा - मानक हिंदी कोश, खंड पहला, पृ॰ 267

61. संपा० डॉ० गोविंद चातक - आधुनिक हिंदी शद्ध-कोश, पृ० 62

62. संपा० रामचंद्र शर्मा - संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर, पृ० 765

63. संपा० श्यामसुंदरदास - हिंदी शद्धसागर, सातवाँ भाग, पृ० 3707

64. संपा० डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' - भाषा-शद्ध कोष, पृ० 1058

65. कै० विद्याधर वामन भिडे - सरस्वती शद्धकोश, भाग 2, पृ० 1252

66. विवेक राय - 'आस्था और चिंतन' के 'भूखवा के मारे' निबंध से उधृत, पृ० 103

67. डॉ० गोविंद त्रिगुणायत - शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत भाग - 2 पृ० 20

68. डॉ० विमला भास्कर - हिंदी में समस्या साहित्य, पृ० 13

69. वही, पृ० 166

70. प्रा० किशोर गिरडकर - मन्नू भंडारी का कथा - साहित्य, पृ० 83

71. डॉ० रमेश देशमुख - आठवें दशक के हिंदी कहानी में जीवन - मूल्य, पृ० 27

72. डॉ० रामगोपाल सिंह चौहान - आधुनिक हिंदी साहित्य, पृ० 30

73. डॉ० विमला भास्कर - हिंदी में समस्या साहित्य, पृ० 9-10